युग निर्माण का शत सूत्री कार्यक्रम

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

युग निर्माण का
शत सूत्री कार्यक्रम

◆

लेखक
वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१५ मूल्य १२.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

ISBN
81-89309-17-×

मूल्य : १२.०० रुपये

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

प्रकाशकीय..

परम पूज्य गुरुदेव जून सन् १९६० से ६१ तक हिमालय अज्ञातवास में रहे। वहाँ से लौटकर उन्होंने नवसृजन के लिए 'युग निर्माण योजना' का उद्घोष किया। उसी क्रम में उन्होंने शत सूत्रीय योजना बनाकर उसे अखण्ड ज्योति मासिक के जून-१९६३ के अंक में प्रकाशित किया। बाद में उसमें कुछ संशोधन करके उसे पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर दिया गया। उस समय संगठन 'अखण्ड ज्योति परिवार' के नाम से प्रचलित था। तब से अब तक अभियान अनेकों छलाँगें लगाते हुए कहीं से कहीं पहुँच चुका है। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, ब्रह्मदीप यज्ञों, संकल्प श्रद्धाञ्जलि, शपथ समारोह एवं अश्वमेध अभियान ने देश और विश्व में इस अभियान को बहुत व्यापकता और गहराई प्रदान की। संगठन गायत्री परिवार के नाम से विख्यात हो गया।

सन् १९८९ से पूज्य गुरुदेव ने 'सबके लिए उज्ज्वल भविष्य' के संकल्प के साथ १२ वर्षीय युग संधि महापुरश्चरण अभियान विश्वव्यापी स्तर पर चलाया। सन् १९९५ में उसकी प्रथम पूर्णाहुति करके अब 'गायत्री परिवार' महापुरश्चरण की महापूर्णाहुति की ओर बढ़ रहा है। इस प्रवाह में तमाम भावनाशील प्रतिभाओं और सृजनशील संगठनों का स्वाभाविक जुड़ाव इस अभियान से हो गया है। सभी अपने-अपने ढंग से नवसृजन के लिए पूरी निष्ठा के साथ कुछ न कुछ करना चाहते हैं। उन्हें इस पुण्य प्रयास में पूज्य गुरुदेव के शत सूत्रीय कार्यक्रम से काफी मदद मिल सकेगी, यह सोच कर यह पुस्तक पुनः प्रकाशित की जा रही है।

पुस्तक के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। समयानुसार हुए बदलावों को लक्ष्य करके जो टिप्पणियाँ जोड़ी गई हैं, उन्हें भिन्न टाइप 'इटेलिक' में छापा गया है। अपेक्षा की गई है कि इससे सृजनशील संघ को-संगठनों को अपनी-अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुसार ठोस कार्यक्रम अपनाने में काफी सुविधा होगी। कोई भी व्यक्ति या संगठन इन कार्यक्रमों को यथावत् या सामयिक परिस्थितियों के अनुसार संशोधित रूप में निःसंकोच अपनाकर इनका लाभ उठा सकते हैं।

— प्रकाशक

विषय सूची

क्र०	विषय	पृ० सं०
१.	युग निर्माण योजना का शत सूत्री कार्यक्रम	५
२.	स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए आहार-विहार की सुव्यवस्था	१३
	(सूत्र-१ से १० तक)	१४ से १७
३.	स्वास्थ्य संवर्धन के सामूहिक प्रयास	१७
	(सूत्र-११ से २० तक)	१७ से २१
४.	अशिक्षा का अंधकार दूर किया जाए	२१
	(सूत्र-२१ से ३० तक)	२२ से २६
५.	जनमानस को धर्म-दीक्षित करने की योजना	२६
	(सूत्र-३१ से ४० तक)	२७ से ३१
६.	सभ्य समाज की स्वस्थ रचना	३१
	(सूत्र-४१ से ५० तक)	३१ से ३७
७.	इन कुरीतियों को हटाया जाए	३७
	(सूत्र-५१ से ६० तक)	३७ से ४३
८.	विभूतिवान् व्यक्ति यह करें	४३
	(सूत्र-६१ से ६८ तक)	४३ से ४७
९.	कला और उसका सदुपयोग	४७
	(सूत्र-६९ से ७६ तक)	४७ से ५२
१०.	सद्भावनाएँ बढ़ाने के लिए	५२
	(सूत्र-७७ से ८६ तक)	५२ से ५६
११.	राजनीति और सच्चरित्रता	५७
	(सूत्र-८७ से ९४ तक)	५७ से ६१
१२.	युग निर्माण की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि	६१
	(सूत्र-९५ से १०० तक)	६१ से ६४

युग निर्माण योजना का शत-सूत्री कार्यक्रम

युग की वह पुकार जिसे पूरा होना ही है–आत्म निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण का उद्देश्य लेकर युग निर्माण योजना नामक एक आध्यात्मिक प्रक्रिया अखण्ड ज्योति के सदस्यों द्वारा जून १९६३ से आरंभ की गई है। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज की अभिनव रचना का लक्ष्य पूरा करने के लिए तभी से यह आंदोलन सफलतापूर्वक चल और द्रुतगति से आगे बढ़ रहा है।

आंदोलन के आरंभ में जनसाधारण को उसका स्वरूप समझाने के लिए जो सूत्र दिये गये थे, उनका समग्र स्वरूप इस पुस्तक में है। इसलिए पाठकों को ऐसा प्रतीत होगा, मानो यह कोई विचाराधीन योजना या किसी भावी कार्यक्रम की कल्पना है, पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं। विगत कई वर्षों से शत सूत्री योजना के यह सभी कार्यक्रम देश-विदेश के लाखों सदस्यों द्वारा बड़े उत्साहपूर्वक कार्यान्वित किए जा रहे हैं। प्रगति जिस आशाजनक और उत्साहपूर्ण ढंग से हो रही है, उसे देखते हुए प्रतीत होता है कि किसी समय का यह स्वप्न अगले कुछ ही समय में एक विशाल वृक्ष का रूप धारण करने जा रहा है और युग निर्माण की बात जो अत्युक्ति जैसी लगती थी, अगले दिनों एक सुनिश्चित तथ्य के रूप में मूर्तिमान् होने वाली है।

नवनिर्माण का यह अभिनव आंदोलन समय की एक अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण पुकार है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के लिए यह योजना अपनाये जाने योग्य है। कारण, आज जिस स्थिति में होकर मनुष्य जाति को गुजरना पड़ रहा है, वह बाहर से उत्थान जैसी दीखते हुए भी वस्तुतः पतन की है। दिखावा, शोभा, शृंगार का आवरण बढ़ रहा है, पर भीतर ही भीतर सब कुछ खोखला हुआ जा रहा है। दिमाग बड़े हो रहे हैं, पर दिल दिन-दिन सिकुड़ते जाते हैं। पढ़-लिखकर लोग होशियार तो खूब हो रहे हैं, पर साथ ही अनुदारता, स्वार्थपरता, विलासिता और अहंकार भी उसी अनुपात से बढ़े हैं। पोशाक, शृंगार, स्वादिष्ट भोजन और मनोरंजन की किस्में बढ़ती जाती हैं, पर असंयम के कारण स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता

चला जा रहा है। दो-तीन पीढ़ी पहले जैसा अच्छा स्वास्थ्य था, वह अब देखने को नहीं मिलता। कमजोरी और अशक्तता हर किसी को किसी न किसी रूप में घेरे हुए हैं। डॉक्टर-देवताओं की पूजा-प्रदक्षिणा करते-करते लोग थक जाते हैं, पर स्वास्थ्य लाभ का मनोरथ किसी बेचारे को कदाचित् ही प्राप्त होता है।

धन बढ़ा है, पर साथ ही मँहगाई और जरूरतों की असाधारण वृद्धि हुई है। खर्चों के मुकाबिले आमदनी कम रहने से हर आदमी अभावग्रस्त रहता है और खर्चे की तंगी अनुभव करता है। पारस्परिक संबंध खिंचे हुए संदिग्ध और अविश्वास से भरे हुए हैं। पति-पत्नी, पिता-पुत्र और भाई-भाई के बीच मनोमालिन्य ही भरा रहता है। यार-दोस्तों में से अधिकांश ऐसे होते हैं, जिनसे विश्वासघात, अपहरण और तोताचश्मी की ही आशा की जा सकती है। चरित्र और ईमानदारी की मात्रा इतनी तेजी से गिर रही है कि किसी को किसी पर विश्वास नहीं होता। कोई करने भी लगे, तो बेचारा धोखा खाता है। पुलिस और जेलों की, मुकदमे और कचहरियों की कमी नहीं, पर अपराधी मनोवृत्ति दिन दूनी-रात चौगुनी बढ़ती जाती है।

जीवन संघर्ष अब इतना कठिन होता जाता है कि सुख-शान्ति के साथ जिन्दगी के दिन पूरे कर लेना अब सरल नहीं रहा। हर व्यक्ति अपनी-अपनी समस्याओं में उलझा हुआ है। चिन्ता, भय, विक्षोभ और परेशानी से उसका चित्त अशान्त बना रहता है। शारीरिक व्यथाएँ, मानसिक परेशानियाँ, पारस्परिक दुर्भाव न सुझलने वाली उलझनें, आर्थिक तंगी, अनीति भरे आक्रमण, छल और विश्वासघात, प्रवंचना, विडम्बना, असफलताएँ और आपत्तियाँ, घात-प्रतिघात और उतार-चढ़ाव का जोर इतना बढ़ गया है कि साधारण रीति से जीवन व्यतीत कर सकना कठिन होता जाता है। संघर्ष इतना प्रबल हो चला है कि जनसाधारण को निरनतर विक्षुब्ध रहना पड़ता है। इस प्रबल मानसिक दबाव को कितने ही लोग सहन नहीं कर पाते, फलस्वरूप आत्म हत्याओं की, पागलों की, निराश-हताश और दीन-दुखियों की संख्या दिन-दिन बढ़ती ही चली जा रही है।

व्यक्तिगत जीवन में हर आदमी को निराशा, तंगी और चिन्ता घेरे हुए है। सामाजिक जीवन में मनुष्य अपने को चारों ओर भेड़ियों से घिरी हुई स्थिति में फँसा अनुभव करता है। राजनीति इतनी विषम हो गई है कि उसमें सत्ताधारी लोगों की मनमानी के आगे जनहित को ठुकराया ही जाता रहता है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अविश्वास और भय का इतना बाहुल्य है कि अणु युद्ध में सारी मानव सभ्यता का विनाश एक दो घंटे के भीतर ही हो जाने का खतरा नंगी तलवार की तरह दुनिया के सिर पर लटक रहा है। कोई प्रसन्न नहीं, कहीं संतोष नहीं, किधर भी शान्ति नहीं। दुर्दशा के चक्रव्यूह में फँसा हुआ मानव प्राणी अपनी मुक्ति का मार्ग खोजता है, पर उसे कहीं भी आशा की किरणें दिखाई नहीं पड़तीं। अंधकार और निराशा के श्मशान में भटकती हुई मानव अंतरात्मा खेद और विक्षोभ के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं करती। बाहरी आडम्बर दिन-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं, पर भीतर ही भीतर सब कुछ खोखला और पोला बनता चला जा रहा है। उस स्थिति में रहते हुए न कोई संतुष्ट रहेगा और न शान्त।

यह प्रत्यक्ष है कि यदि संपूर्ण विनाश ही अभीष्ट न हो, तो आज की परिस्थितियों का अविलम्ब परिवर्तन अनिवार्यत: आवश्यक है। स्थिति की विषमता को देखते हुए अब इतनी भी गुंजायश नहीं रही कि पचास-चालीस वर्ष भी इसी ढर्रे को और आगे चलने दिया जाए। अब दुनिया की चाल बहुत तेज हो गई है। चलने का युग बीत गया, अब हम लोग दौड़ने के युग में रह रहे हैं, सब कुछ दौड़ता हुआ दीखता है। इस घुड़दौड़ में पतन और विनाश भी उतनी ही तेजी से बढ़ा चला आ रहा है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रतिरोध एवं परिवर्तन यदि कुछ समय और रुका रहे, तो समय हाथ से निकल जाएगा और हम इतने गहरे गर्त में गिर पड़ेंगे कि फिर उठ सकना संभव न रहेगा। इसलिए आज की ही घड़ी इसके लिए सबसे श्रेष्ठ मुहूर्त है, जब परिवर्तन की प्रतिक्रिया का शुभारंभ किया जाए।

१-स्वस्थ शरीर, २-स्वच्छ मन और ३-सभ्य समाज की अभिनव रचना, यही युग निर्माण का उद्देश्य है। इसके लिए अपना व्यक्तित्व,

अपना परिवार और अपना समाज हमें आत्मिक दृष्टि से उत्कृष्ट बनाना पड़ेगा। भौतिक सुसज्जा कितनी ही प्राप्त क्यों न कर ली जाए, जब तक आत्मिक उत्कृष्टता न बढ़ेगी, तब तक न मनुष्य सुखी रहेगा और न संतुष्ट। उसकी सफलता एवं समृद्धि भी क्षणिक तथा दिखावटी मानी जाएगी। मनुष्य का वास्तविक पराक्रम उसके सद्गुणों से ही निखरता है। सद्गुणी ही सच्ची प्रगति कर सकता है। उच्च अंत:करण वाले, विशाल हृदय, दूरदर्शी एवं दृढ़ चरित्र व्यक्ति अपना गौरव प्रकट करते हैं, दूसरों का मार्गदर्शन कर सकने लायक क्षमता संपन्न होते हैं। ऐसे लोगों का बाहुल्य होने से ही कोई राष्ट्र सच्चे अर्थों में समर्थ एवं समृद्ध बनता है।

योजना के विविध कार्यक्रमों में यही तथ्य सन्निहित है। व्यक्ति का विकास, परिवार का निर्माण और सामाजिक उत्कर्ष में परिपूर्ण सहयोग की त्रिविधि प्रवृत्तियाँ जन साधारण के मन:क्षेत्र में प्रतिष्ठापित एवं परिपोषित करने के लिए यह अभियान आरंभ किया गया है। इसकी सफलता पर हमारा वैयक्तिक एवं सामूहिक भविष्य उज्ज्वल या अंधकारमय बनेगा।

आज आर्थिक विकास पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है, जितनी भी योजनाएँ हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखकर बनाई जा रही हैं कि मनुष्य को अधिक समृद्ध बनाया जाए। शिक्षा भी इसी दृष्टि से दी जा रही है कि पढ़ने वाला अधिक कमाऊ बन सके। इस बात की सर्वत्र उपेक्षा ही दीखती है कि मनुष्य का व्यक्तित्व ऐसा बने, जिसकी सुगन्ध से सारा वातावरण महकने लगे। नैतिकता की धर्म भावना, कर्त्तव्य परायणता एवं सदाचरण की अभिवृद्धि के लिए हमारे नेताओं का ध्यान नहीं के बराबर है। इस दिशा में जो किया जा रहा है, वह बहुत ही स्वल्प एवं निराशाजनक है। आवश्यकता इस बात की है कि आर्थिक विकास से भी अधिक ध्यान नैतिक उत्कर्ष के लिए दिया जाए और अभी उसके लिए विशाल परिमाण में रचनात्मक कार्यक्रमों का विस्तार किया जाए। आर्थिक विकास का कोई मूल्य तभी रह सकता है, जब वह सज्जनता संपन्न व्यक्तियों का होता हो। यदि दुष्ट और दुर्जन साधन संपन्न बन जायेंगे, तो उससे उनका तथा

सारे समाज का अधिक अहित ही होगा। दुर्गुणी व्यक्तियों की बढ़ी हुई कमाई ऐसे कामों में खर्च होती है, जिनसे अशान्ति और अनाचार का ही सृजन होता है। अस्तु , आवश्यकता इस बात की है कि समाज के कर्णधारों का जितना ध्यान आर्थिक विकास की योजनाओं में लगा हुआ है, जितना प्रयत्न और खर्च उन कार्यों के लिए किया जाता है, कम से कम उतना तो नैतिक उत्कर्ष के लिए किया ही जाना चाहिए। होना तो उससे भी अधिक चाहिए; क्योंकि धन की अपेक्षा व्यक्तित्व का मूल्य अधिक है। व्यक्तित्व संपन्न व्यक्ति निर्धन रहकर भी ऋषियों की तरह प्रकाशवान् बन सकता है, पर अपार धन होते हुए भी दुर्जन मनुष्य केवल विनाश ही प्रस्तुत कर सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए नैतिक उत्कर्ष का मूल्य धन की अपेक्षा अनेक गुना अधिक है। अतएव उसके लिए प्रयत्न भी अधिक ही होना चाहिए था, पर खेद इसी बात का है कि सबसे अधिक उपेक्षा इसी दिशा में बरती जा रही है।

व्यक्ति के परिवर्तन से ही समाज, विश्व एवं युग का परिवर्तन संभव है। इस धरती पर स्वर्गीय वातावरण का सृजन करने के लिए हमें जनमानस का स्तर बदलना पड़ेगा। आज जिस स्वार्थपरता, संकीर्णता, असंयम और अनीति ने अपना पैर पसार रखा है, उसे हटाने का प्रयत्न करना होगा और उसके स्थान पर सज्जनोचित सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों को प्रतिष्ठापित करना पड़ेगा। यह कार्य केवल कहने-सुनने से, लिखने-पढ़ने से संभव नहीं, लेखनी एवं वाणी में प्रचारात्मक शक्ति तो होती है, पर उनका प्रभाव बहुत थोड़ा और बहुत स्वल्प काल तक रहता है। मनुष्यों में एक दूसरे को देखकर अनुकरण करने की प्रवृत्ति ही प्रधान रूप से काम करती है। दुष्कर्मों को देखकर लोग दुष्कर्म करते हैं। सत्कर्मों को देखकर वैसी गतिविधि अपनाने को जी करता है। इसलिए प्रयत्न करना होगा कि सुधरे हुए आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अनुसार लोग अपना जीवनक्रम बनाएँ। श्रेष्ठ व्यक्तियों के श्रेष्ठ आचरणों को देखकर ही जन साधारण में वे सत्प्रवृत्तियाँ विकसित होंगी, जो युग निर्माण जैसे महान् अभियान के लिए नितान्त आवश्यक हैं।

अच्छा होता कि यह कार्य राष्ट्र के कर्णधारों द्वारा विशाल पैमाने पर सुसंगठित रूप से किया जाता, पर आज हमारे नेताओं की विचारधारा बिलकुल दूसरी है, वे आर्थिक उन्नति को सर्वोपरि मानते हैं और नीति, सदाचार की बात एक फैशन की तरह कहते-सुनते तो रहते हैं, पर उस तरह की स्थिति पैदा करने के लिए कोई ठोस कदम उठाने का उनका कोई मन दिखाई नहीं पड़ता। ऐसी निराशाजनक परिस्थितियों में हम जो कुछ भी हैं-जिस छोटी स्थिति में भी हैं, वहीं से अपनी स्वल्प सामर्थ्य के अनुसार कार्य आरंभ कर देना चाहिए, वही कर भी रहे हैं।

युग निर्माण योजना का आरंभ किसी संस्था के आधार पर नहीं, वरन् एक वैयक्तिक प्रयत्न के रूप में आरंभ कर रहे हैं। समयानुसार उसका कोई संगठित रूप बन जाए-यह आगे की बात है, पर आज तो अपनी स्वल्प सामर्थ्य को देखते हुए ही उस कार्य का श्रीगणेश किया जा रहा है।

अखण्ड ज्योति परिवार श्रेय पथ पर चलने वाले २४ लाख व्यक्तियों को एक आध्यात्मिक शृंखला में पिरोये रहने वाला सूत्र है। *[अब यह संख्या करोड़ों तक जा पहुँची है।]* लेखों के आधार पर नहीं, भावना और आत्मीयता के सुदृढ़ संबंधों की मजबूत रस्सी से बँधा हुआ यह एक ऐसा संगठन है, जिसे कौटुम्बिक परिजनों से किसी भी प्रकार कम महत्त्व नहीं दिया जा सकता। व्यक्तिगत एकता और आत्मीयता के बंधन हम लोगों के बीच इतनी मजबूती से बँधे हुए हैं कि इस समूह को हमें अपना व्यक्तिगत परिवार कहने में तनिक भी अत्युक्ति दिखाई नहीं पड़ती।

जिस प्रकार सर्वसाधारण को अपने रक्त से संबंधित परिवार को सुविकसित करने की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है, उसी प्रकार हम अपने इन लाखों कुटुम्बियों को लेकर जीवन निर्माण कार्य में अवतीर्ण हो रहे हैं। उन्हें सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा तो बहुत पहले से दे रहे थे, पर अब उनके सामने शत सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत करके आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता को जीवन व्यवहार में समन्वित करने का अभ्यास करा रहे हैं। यों इन कार्यक्रमों को लाखों व्यक्तियों द्वारा अपनाये जाने पर इनका प्रभाव समाज के नव निर्माण की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दूरवर्ती एवं चिरस्थायी

होगा। बौद्धिक एवं सामाजिक क्रान्ति की महान् आवश्यकता की वह चिनगारी जलेगी, जो आगे चलकर पाप-तापों को भस्मसात् करने में दावानल का रूप धारण कर सके। साथ ही इसमें आत्मकल्याण एवं जीवन मुक्ति का उद्देश्य भी सन्निहित है। यह योजना व्यक्ति को निकृष्ट स्तर का जीवनयापन करने की दुर्दशा से ऊँचा उठाकर उत्कृष्टता अपनाने की आध्यात्मिक साधना का अवसर उपस्थित करती है। इसलिए उसे एक प्रकार की योग साधना, तपश्चर्या, नर-नारायण की भक्ति तथा भावोपासना भी कह सकते हैं।

इस मार्ग पर चलते हुए-शत सूत्री कार्यक्रमों में से जिसे जितने अनुकूल पड़ें, उन्हें अपनाते हुए निश्चित रूप से साहस एवं मनस्विता का परिचय देना पड़ेगा। कई व्यक्ति उपहास एवं विरोध करेंगे। स्वार्थ को भी सीमित एवं संयमित करना पड़ेगा। आर्थिक दृष्टि से थोड़ा घाटा भी रह सकता है और अपने पूर्व संचित कुसंस्कारों से लड़ने में कठिनाई भी दृष्टिगोचर हो सकती है। जो इतना साहस कर सकेगा, उसे सच्चे अर्थों में साधना-समर का शूरवीर योद्धा कहा जा सकेगा। यह साहस ही इस बात की कसौटी मानी जाएगी कि किसी व्यक्ति ने आध्यात्मिक विचारों को हृदयंगम किया है या केवल सुना-समझा भर है। योजना एक विशुद्ध साधना है, जो युग निर्माण का, समाज की अभिनव रचना का उद्देश्य पूरा करते हुए व्यक्ति को उसका जीवन लक्ष्य पूरा कराने में किसी भी अन्य जप-तप वाली साधना की अपेक्षा अधिक सरलता से पूर्णता के लक्ष्य तक पहुंचा सकती है।हम ३० हजार व्यक्ति एकजुट होकर इस शत सूत्री कार्यक्रम में संलग्न हुए थे। गुरु पूर्णिमा (आषाढ़ सुदी) जून १९६२ को इस महान् अभियान का विधिवत् शुभारंभ हुआ था। इन सभी को हर सदस्य कार्यान्वित करें, यह आवश्यक नहीं, पर जिससे जितना संभव हो सके, जिन कार्यक्रमों को अपनाया जा सके, उन्हें अपनाना चाहिए। वैसा ही परिजन कर रहे हैं, जैसे-जैसे साहस एवं मनोबल बढ़ता चलेगा, अधिक तेजी से कदम बढ़ेंगे।

अखण्ड ज्योति के दस सदस्य या उससे थोड़े न्यूनाधिक सदस्य जहाँ

कहीं हैं, वहाँ उनका एक संगठन बनाया जा रहा है। एक शाखा संचालक तथा पाँच अन्य व्यक्तियों की कार्य समिति चुन ली जाती है। इस शाखा का कार्यालय जहाँ रहता है, उसे युग निर्माण केन्द्र कहते हैं। यह केन्द्र सदस्यों के परस्पर मिलने-जुलने का एक मिलन मंदिर बनकर योजना की रचनात्मक प्रवृत्तियों के संचालन का उद्गम बन जाता है। इस स्थान पर अनिवार्य रूप से एक युग निर्माण पुस्तकालय रहता है, जहाँ से जनता में घर-घर जीवन निर्माण का सत्साहित्य पहुंचाने, पढ़ाने, वापस लाने एवं अभिरुचि उत्पन्न करने की प्रक्रिया चलती रहती है। परस्पर विचार विनिमय द्वारा सुविधानुसार जो कुछ, जहाँ किया जाना संभव होता है, वह वहाँ किया जाता रहता है। *[वर्तमान में प्रज्ञामण्डल-महिला मंडल को इकाई बना कर ५-१० से २०-३० मण्डलों का एक समूह बनाया जा रहा है, जिसे स-३ (सक्रिय संगठित समूह) कहा गया है, इन स-३ समूहों में से जो समर्थ समयदानी हैं, उनका भी एक संगठन बनाया जा रहा है, जिसे स-४ (समर्थ समयदानी संगठित समूह) की संज्ञा प्राप्त है। इन कार्यों की सूचना पहले युग निर्माण योजना मासिक और अब प्रज्ञा अभियान पाक्षिक पत्रिका में छपती रहती है, जिससे सभी शाखाओं को देश भर में चलने वाली इस महान् प्रक्रिया की प्रगति का पता चलता रहता है और समय-समय पर आवश्यक प्रकाश एवं मार्गदर्शन भी प्राप्त होता है।]*

यह सोचना उचित नहीं कि इतने बड़े संसार में २४ लाख व्यक्ति नगण्य हैं, उनके सुधरने से क्या बनने वाला है? परिवार के प्रत्येक सदस्य को यह विचारधारा दस अन्य व्यक्तियों तक प्रसारित करते रहने की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। उसके पास जो अखण्ड ज्योति मासिक एवं युग निर्माण पत्रिकाएँ पहुँचती हैं, उन्हें स्वयं ही पढ़ना पर्याप्त नहीं होता, वरन् कम से कम दूसरे दस को उन्हें पढ़ाने या सुनाने की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार अपने २४ लाख व्यक्ति दस-दस से संबंधित रहने के कारण २४ करोड़ व्यक्तियों तक यह प्रकाश पहुँचाते रहते हैं। इनमें से निश्चित रूप से कुछ योजना के विधिवत् सदस्य बढ़ेंगे ही, अखण्ड ज्योति परिवार में सम्मिलित होंगे ही, फिर उन्हें भी दस नये व्यक्तियों तक यह

प्रकाश पहुँचाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होना पड़ेगा। [*अब यह क्रम १ से ५ और ५ से २५. के क्रम से आगे बढ़ाया जा रहा है।*] इस तरह प्रचार परम्परा की यह पीढ़ी एक से दस में गुणित होती हुई पाँच-छह छलाँगों में सारे विश्व में अपना प्रभाव प्रस्तुत कर सकेगी और जो अभियान आरंभ किया गया है, उस स्वप्न को साकार रूप में प्रस्तुत कर सकेगी। युग निर्माण योजना इसी अभाव की पूर्ति का एक विनम्र प्रयास है।

शत सूत्री कार्यक्रम

स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए आहार-विहार की सुव्यवस्था

युग निर्माण के लिए आवश्यक विचार क्रान्ति का उपयोग यदि शरीर क्षेत्र में किया जा सके, तो हमारा बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य सुधर सकता है। बीमारियों से सहज ही पिण्ड छूट सकता है। आज अपने शरीर की जो स्थिति है, कल से ही उसमें आशाजनक परिवर्तन आरंभ हो सकता है। अस्वस्थता का कारण असंयम एवं अनियमितता ही है। प्रकृति के आदेशों का उल्लंघन करने के दण्डस्वरूप ही हमें बीमारी और कमजोरी का कष्ट भुगतना पड़ता है। सरकारी कानूनों की तरह प्रकृति के भी कानून हैं। जिस प्रकार राज्य के कानूनों को तोड़ने वाले अपराधी जेल की यातना भोगते हैं, वैसे ही प्रकृति के कानूनों की अवज्ञा कर स्वेच्छाचार बरतने वाले व्यक्ति बीमारियों का कष्ट सहते हैं और अशक्त-दुर्बल बने रहते हैं। पूर्व जन्मों के प्रारब्ध दण्डस्वरूप मिलने वाले तथा प्रकृति प्रकोप, महामारी, सामूहिक अव्यवस्था, दुर्घटना एवं विशेष परिस्थितिवश कभी-कभी संयमी लोगों को भी शारीरिक कष्ट भोगने पड़ते हैं, पर ९० प्रतिशत शारीरिक कष्टों में हमारी बुरी आदतें और अनियमितता ही प्रधान कारण होती है।

सृष्टि के सभी जीव-जंतु नीरोग रहते हैं। अन्य पशु और उन्मुक्त आकाश में विचरण करने वाले पक्षी यहाँ तक कि छोटे-छोटे कीट-पतंग भी समय आने पर मरते तो हैं, पर बीमारी और कमजोरी का कष्ट नहीं

भोगते। जिन पशुओं को मनुष्य ने अपने बंधन में बाँधकर अप्राकृतिक रहन-सहन के लिए जितना विवश किया है, उतनी अस्वस्थता का त्रास उन्हें भोगना पड़ता है, अन्यथा रोग और दुर्बलता नाम की कोई वस्तु इस संसार में नहीं है। उसे तो हम स्वेच्छाचार बरतकर स्वयं ही बुलाया करते हैं। यदि संयम और नियमितता की नीति अपना ली जाए, तो फिर न बीमारी रहे और न कमजोरी। अपनी आदतें ही संयमशीलता और आहार-विहार में व्यवस्था रखने की बनानी होंगी। इस निर्माण में जिसे जितनी सफलता मिलेगी, वह उतना आरोग्य लाभ का आनंद भोग सकेगा। आवश्यक सूत्र हैं-

१. दो बार का भोजन- भोजन दोपहर और शाम को दो बार ही किया जाए। प्रातः दूध आदि हलका पेय पदार्थ लेना पर्याप्त है। बार-बार खाते रहने की आदत बिलकुल छोड़ देनी चाहिए।

२. भोजन को ठीक तरह चबाया जाए-भोजन इतना चबाना कि वह सहज ही गले से नीचे उतर जाए। उसकी आदत ऐसे डाली जा सकती है कि रोटी अकेली, बिना साग के खाये और साग को अलग से खाये। साग के साथ गीली होने पर रोटी कम चबाने पर भी गले से नीचे उतर जाती है, पर यदि उसे बिना शाक के खाया जा रहा है, तो उसे बहुत देर तक चबाने पर ही गले से नीचे उतारा जा सकेगा। यह बात अभ्यास के लिए है। जब आदत ठीक हो जाए, तो शाक मिलाकर भी खा सकते हैं।

३. भोजन अधिक मात्रा में न हो-आधा पेट भोजन, एक चौथाई जल, एक चौथाई साँस आने-जाने के लिए खाली रखना चाहिए अर्थात भोजन आधे पेट किया जाए।

४. स्वाद की आदत छोड़ी जाए-अचार-मुरब्बे, सिरका, मिर्च-मसाले, खटाई-मीठा की अधिकता पेट खराब होने और रक्त को दूषित करने का कारण होती है, इन्हें छोड़ा जाए। हलका सा नमक और जरूरत हो तो थोड़ा धनियाँ, जीरा सुगन्ध के लिए लिया जा सकता है, पर अन्य मसाले तो छोड़ ही देने चाहिए। शरीर के लिए जितना नमक, शक्कर आवश्यक है, उतना अन्न, शाक आदि में पहले से ही मौजूद है। बाहर से जो मिलावट

की जाती है, वह तो स्वाद के लिए है। हमें स्वाद छोड़ना चाहिए। अभ्यास के लिए कुछ दिन तो नमक-मीठा बिलकुल ही छोड़ देना चाहिए और अस्वाद व्रत पालन करना चाहिए। आदत सुधर जाने पर हलका सा नमक, नीबू, आँवला, अदरक, हरा धनिया, पोदीना आदि को भोजन में मिलाकर उसे स्वादिष्ट बनाया जा सकता है। सूखे मसाले स्वास्थ्य के शत्रु ही माने जाने चाहिए। मीठा कम से कम लें। आवश्यकतानुसार गुड़ या शहद से काम चलायें।

५. शाक और फलों का अधिक प्रयोग-शाकाहार का भोजन में प्रमुख स्थान रहे। आधा या तिहाई अन्न पर्याप्त है। शेष भाग में शाक, फल, दूध, छाछ आदि रहे। ऋतु फल सस्ते भी होते हैं और अच्छे भी रहते हैं। आम, अमरूद, बेर, जामुन, शहतूत, पपीता, केला, ककड़ी, खीरा, तरबूज, आदि अपनी-अपनी फसलों पर काफी सस्ते रहते हैं। लौकी, तोरई, परबल, टमाटर, पालक, मेथी आदि सुपाच्य शाकों की मात्रा सदा अधिक ही रखनी चाहिए। गेहूँ, चना आदि को अंकुरित करके खाया जाए तो उनसे बादाम जितना पोषक तत्त्व मिलेगा। उन्हें कच्चा हजम न किया जा सके, तो उबाला, पकाया भी जा सकता है। अन्न, शाक और फलों के छिलकों में जीवन तत्त्व (विटामिन) बहुत रहता है, इसलिए आम, केला, पपीता आदि जिनका छिलका आवश्यक रूप से हटाना पड़े, उन्हें छोड़कर शेष के छिलके खाये जाने ही ठीक हैं।

६. हानिकारक पदार्थों से दूर रहें-माँस, मछली, अण्डा, पकवान, मिठाई, चाट, पकौड़ी जैसे हानिकारक पदार्थों से दूर ही रहना चाहिए। चाय, भाँग, शराब आदि नशों को स्वास्थ्य का शत्रु ही माना गया है। तम्बाकू खाना, पीना, सूँघना, पान चबाना आदि आदतें आर्थिक और शारीरिक दोनों दृष्टि से हानिकारक हैं। वासी-कूसी, सड़ी-गली, गन्दगी के साथ बनाई गई वस्तुओं से स्वास्थ्य का महत्त्व समझने वालों को बचते ही रहना चाहिए।

७. भाप से पकाये भोजन के लाभ- दाल-शाक पकाने में भाप की पद्धति उपयोगी है। खुले मुँह के बर्तन में तेज आग से पकाने से शाक के

७० प्रतिशत जीवन तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। हाथ की चक्की का पिसा आटा काम में लेना चाहिए। मशीन की चक्कियों में पिसे आटे से अधिकांश जीवन तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। हाथ की चक्कियों और भाप से पकाने के बर्तनों का घर-घर प्रचलन होना चाहिए। ढीले और कम कपड़े पहनने चाहिए। सर्दी-गर्मी का प्रभाव सहने की क्षमता बनाये रहनी चाहिए। चिन्ता और परेशानी से चिंतित न रहकर हर क्षण प्रसन्न मुद्रा बनाये रहनी चाहिए।

८. **स्वच्छता**-शरीर को अच्छी तरह घिसकर नहाना चाहिए। शरीर को स्पर्श करने वाले कपड़े रोज धोने चाहिए। बिस्तरों को जल्दी-जल्दी धोते रहा जाए। घरों में मक्खी, मकड़ी, मच्छर, खटमल, पिस्सू, जुँए, चीलर, छिपकली, छछूँदर, चूहे, घुन से रक्षा करनी चाहिए। मल-मूत्र त्यागने के स्थानों की पूरी तरह सफाई रखी जाए। नालियाँ गंदी न रहने पावें। खाद्य पदार्थों को ढककर रखा जाए और सोते समय मुँह ढका न रहे। मकान में इतनी खिड़कियाँ और दरवाजे रहें कि प्रकाश और हवा आने-जाने की समुचित व्यवस्था बनी रहे। बर्तनों को साफ रखा जाए और उनके रखने का स्थान भी साफ हो। दीवार और फर्शों की जल्दी-जल्दी पुतायी, लिपायी, धुलाई करते रहा जाए। सफाई का हर क्षेत्र में पूरा-पूरा ध्यान रखा जाए। हर भोजन के बाद कुल्ला करना, रात को सोते समय दाँत साफ करके सोना, अधिक ठंडे और गरम पदार्थ न खाना दाँतों की रक्षा के लिए आवश्यक है।

९. **खुली वायु में रहिए**- रात को जल्दी सोने और प्रातः जल्दी उठने की आदत डाली जाए। इससे स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और सबेरे के समय का जिस कार्य में भी उपयोग किया जाए, उसी में सफलता मिलती है। प्रातः टहलने, व्यायाम एवं मालिश करने के उपरान्त रगड़-रगड़कर नहाने का अभ्यास प्रत्येक स्वास्थ्य के इच्छुक को करना चाहिए। सबेरे खुली हवा में टहलने वाले और व्यायाम करने वालों का स्वास्थ्य कभी खराब नहीं होने पाता। जो स्त्रियाँ टहलने नहीं जा सकतीं, उन्हें चक्की पीसनी चाहिए या ऐसा ही कोई पसीना निकलने वाला कड़ा

काम करना चाहिए।

१०. ब्रह्मचर्य का पालन-ब्रह्मचर्य का समुचित ध्यान रखा जाए। विवाहितों और अविवाहितों को मर्यादाओं का समुचित पालन करना चाहिए। इस संबंध में जितनी कठोरता बरती जाएगी, स्वास्थ्य उतना ही अच्छा रहेगा। बुद्धिजीवियों और छात्रों के लिए तो यह और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि इंद्रिय असंयम से मानसिक दुर्बलता आती है और उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचने में भारी अड़चन पड़ती है।

स्वास्थ्य संवर्धन के सामूहिक प्रयास

११. वनस्पतियों का उत्पादन- शाक, फल, वृक्ष और पुष्पों को उत्पन्न करने का आंदोलन स्वास्थ्य संवर्धन की दृष्टि से बड़ा उपयोगी हो सकता है। घरों के आसपास फूल उगाने, छप्परों पर लौकी, तोरई, सेम आदि की बेल चढ़ाने, आँगन में तुलसी का बिरवा रोपने तथा जहाँ भी खाली जगह हो वहाँ फूल, पौधे लगा देने का प्रयत्न करना चाहिए। केला-पपीता आदि थोड़ी जगह होने पर भी लग सकते हैं। कोठियों, बंगलों में अक्सर थोड़ी जगह खाली रहती है, वहाँ शाक एवं फूलों को आसानी से उगाया जा सकता है। लगाने, सींचने, गोड़ने, मेड़ बनाने आदि का काम घर के लोग किया करें, तो उससे श्रमशीलता की आदत पड़ेगी और स्वास्थ्य सुधरेगा। जड़ीबूटी के उद्यान एवं फार्म लगाने का प्रयत्न करना भी स्वास्थ्य संवर्धन की दृष्टि से आवश्यक है।

१२. पकाने की पद्धति में सुधार- भाप से भोजन पकाने के बर्तन एवं घरेलू चक्कियाँ उपलब्ध हो सकें, ऐसी निर्माण और विक्रय की व्यवस्था रहे। इनका मूल्य सस्ता रहे, जिससे उनकी लोकप्रियता बढ़े। अब बाल वियरिंग लगी हुई चक्की बनने लगी है। चलने में बहुत हलकी होती है तथा एक घण्टे में काफी आटा पीसती है। इनका प्रचलन घर-घर किया जाए और इनकी टूट-फूट को सुधारने तथा चलाने संबंधी आवश्यक जानकारी सिखाई जाय। खाते-पीते घरों की स्त्रियाँ चक्की पीसने में अपमान और असुविधा समझने लगी हैं, उन्हें चक्की के स्वास्थ्य संबंधी

लाभ समझाये जाएं। पुरुष स्वयं पीसना आरंभ करें। लोग हाथ का पिसा आटा खाने का ही व्रत लें, तो चक्की का प्रचलन बढ़ेगा। इसी प्रकार भाप से भोजन पकने लगा, तो वह ७० फीसदी अधिक पौष्टिक होगा और खाने में स्वाद भी लगेगा। इनका प्रसार आंदोलन के ऊपर ही निर्भर है।

१३. सात्विक आहार की पाक विद्या-तली हुई, भुनी हुई, जली हुई अस्वास्थ्यकर मिठाइयों और पकवानों के स्थान पर ऐसे पदार्थों का प्रचलन किया जाए, जो स्वादिष्ट भी लगें और लाभदायक भी हों। लौकी की खीर, गाजर का हलुआ, कचूमर, श्रीखण्ड, मीठा दलिया, अंकुरित अन्नों के व्यंजन जैसे पदार्थ बनाने की एक स्वतंत्र पाक विद्या का विकास करना पड़ेगा, जो दावतों में भी काम आ सके और हानि जरा भी न पहुँचाते हुए स्वादिष्ट भी लगें। चाय पीने वालों की आदत छुड़ाने के लिए गेहूँ के भुने दलिए की या जड़ीबूटियों से बने हुए क्वाथ की चाय बनाना बताया जा सकता है। पान-सुपाड़ी के स्थान पर सौफ और धनिया संस्कारित करके तैयार किया जा सकता है। प्राकृतिक आहार के व्यंजनों की पाक विद्या का प्रसार हो सके, तो स्वास्थ्य रक्षा की दिशा में बड़ी सहायता मिले।

१४. गंदगी का निराकरण-सार्वजनिक सफाई का प्रश्न सरकार के हाथों छोड़ देने से ही काम न चलेगा। लोगों को अपनी गंदी आदतें छोड़ने के लिए और सार्वजनिक सफाई में दिलचस्पी लेने की प्रवृत्ति पैदा करनी पड़ेगी। बच्चों को घर से बाहर सार्वजनिक स्थानों पर एव नालियों पर टट्टी करने बिठा देना, सड़कों तथा गलियों में घर का कूड़ा बिखेर देना, धर्मशालाओं में, प्लेटफार्मों, रेल के डिब्बों और सार्वजनिक स्थानों को फलों के छिलके तथा नाक-थूक, रद्दी कागज, दौने, पत्तल आदि डालकर गंदा करना बुरी आदते हैं। इससे बीमारी और गंदगी फैलती है।

देहातों में टट्टी-पेशाब के लिए उचित स्थानों की व्यवस्था नहीं होती। गाँव के निकटवर्ती स्थानों तथा गली-कूचों में इस प्रकार की गंदगी नहीं रोकी जाती। यह प्रवृत्ति बदली जानी चाहिए। लकड़ी से बने इधर से उधर रखे जाने वाले शौचालय यदि देहातों में काम आने लगें, तो खेती को खाद भी मिले,गंदगी भी न फैले और बपेर्दगी भी न हो। खुरपी लेकर

शौच जाना, गड्ढे खोद कर उसमें कंकड़-पत्थर के टुकड़े डालकर सोखने वाले पेशाबघर बनाये जाएँ और उनमें चूना, फिनायल पड़ा रहे, तो जहाँ-तहाँ पेशाब करने से फैलने वाली बीमारियों की बहुत रोकथाम हो सकती है।

१५. नशे का त्याग-नशेबाजी की बुराइयों को समझाने के लिए और इस बुरी आदत को छुड़ाने के लिए सभी प्रचार साधनों का उपयोग किया जाए। पंचायतों, धार्मिक समारोहों एवं शुभ कार्यों के अवसर पर इस हानिकारक बुराई को छुड़ाने के लिए प्रतिज्ञाएँ कराई जाएँ।

१६. व्यायाम और उसका प्रशिक्षण-आसन, व्यायाम, प्राणायाम, सूर्य नमस्कार, खेलकूद, सबेरे का टहलना, अंग संचालन, मालिश आदि की विधियाँ सिखाने के लिए 'वर्ग' (क्लास) चलाए जाएँ। सामूहिक व्यायाम करने के लिए जहाँ संभव हो, वहाँ दैनिक व्यवस्था की जाए। व्यायाम अपने आप में एक सर्वांगपूर्ण चिकित्सा शास्त्र है। चारपाई पर पड़े हुए रोगी भी कुछ खास प्रकार के अंग संचालन, हलके व्यायाम करते हुए कठिन रोगों से छुटकारा पा सकते हैं। कमजोर प्रकृति के व्यक्ति, छोटे बच्चे, विद्यार्थी, किशोर, तरुण, स्त्रियाँ-लड़कियाँ, यहाँ तक कि गर्भवती स्त्रियों के लिए भी उनकी स्थिति के उपयुक्त व्यायाम बहुत ही आशाजनक प्रतिफल उत्पन्न कर सकता है।

अखाड़े, व्यायामशाला, क्रीड़ा प्रांगण आदि स्वास्थ्य संस्थानों की जगह-जगह स्थापना की जानी चाहिए। लाठी, भाला, तलवार, धनुष आदि हथियार चलाने की शिक्षा जहाँ स्वास्थ्य सुधारती है, व्यायाम की आवश्यकता पूर्ण करती है, वहीं वह मनोबल और साहस भी बढ़ाती एवं आत्म रक्षा की क्षमता उत्पन्न करती है। कुश्ती, दौड़, तैराकी, रस्साकशी; लम्बी कूद, ऊँची छलाँग, कबड्डी, गेंद आदि का दंगल एवं प्रतियोगिता आयोजनों और पुरस्कार व्यवस्था करवाने से भी इन कार्यों में लोगों का उत्साह बढ़ता है। ऐसे सम्मेलन यदि ईर्ष्या-द्वेष से बचाये रखे जाएँ और गलत प्रतिस्पर्धा न होने दी जाए, तो पारस्परिक प्रेमभाव बढ़ाने एवं गुण्डागर्दी के विरुद्ध एक शक्ति प्रदर्शन का भी काम दे सकते हैं।

डम्बल, मुगदर, लेजम, खींचने के स्प्रिंग, तानने के रबड़ के घेरे, गेंद-बल्ला आदि व्यायाम संबंधी उपकरण तथा साहित्य हर जगह मिल सकें, ऐसी विक्रय व्यवस्था भी हर जगह रहनी चाहिए।

'फर्स्ट एड' की शिक्षा का प्रबन्ध हर जगह रहना चाहिए और उसे विधिवत् सीखने तथा रैडक्रास सोसाइटी का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए उत्साह पैदा करना चाहिए। स्काउटिंग की भी भावना और शिक्षा का प्रसार होना आवश्यक है।

१७. साप्ताहिक उपवास-साप्ताहिक छुट्टी पेट को भी मिलनी चाहिए। छह दिन काम करने के बाद एक दिन पेट को काम न करना पड़े, उपवास रखा करे, तो पाचन क्रिया में कोई खराबी न आने पाए। विश्राम के दिन सप्ताह भर की जमा हुई कब्ज पच जाया करे और अगले सप्ताह-अधिक अच्छी तरह काम करने के लिए पेट समर्थ हो जाया करे। देश में अन्न की वर्तमान कमी के कारण विदेशों से बहुत दुर्लभ विदेशी मुद्रा व्यय करके अन्न मँगाना पड़ सकता है। यदि सप्ताह में एक दिन उपवास का क्रम चल पड़े, तो यह समस्या उत्पन्न न हो। पूरे दिन न बन पड़े, तो एक समय भोजन छोड़ने की व्यवस्था तो करनी ही चाहिए। जो लोग अधिक अशक्त होवें, वे दूध, फल, शाक आदि भले ही ले लिया करें, पर सप्ताह में एक समय अन्न छोड़ने, उपवास करने का तो प्रचलन किया जाए। उपवास का शारीरिक लाभ तो स्पष्ट ही है, आध्यात्मिक लाभ भी कम नहीं।

१८. बड़ी दावतें और जूठन-बड़ी दावतों में अन्न का अपव्यय न होने देना चाहिए। प्रीति भोजों में खाने वालों की संख्या कम से कम रहे और खाने की वस्तुएँ कम संख्या में ही परोसी जाएँ, जिससे अन्न की बर्बादी न हो।

थाली में जूठन छोड़ने की प्रथा बिलकुल ही बंद की जाए। महत्तर या कुत्ते को भोजन देना हो, तो अच्छा और स्वच्छ भोजन देना चाहिए। उच्छिष्ट भोजन कराने से तो उलटा पाप चढ़ता है। खाने वाले की भी शारीरिक और मानसिक हानि होती है। अन्न देवता का अपमान धार्मिक दृष्टि से भी पाप है। अन्न की बर्बादी तो प्रत्यक्ष ही है। *[इसी प्रकार अन्यान्य कुरीतियों को भी दूर करने का पुरजोर प्रयत्न किया जाए।]*

१९. संतान की सीमा मर्यादा-देश की बढ़ती हुई जनसंख्या, आर्थिक कठिनाई, साधनों की कमी और जन साधारण के गिरे हुए स्वास्थ्य को देखते हुए यही उचित है कि प्रत्येक गृहस्थ कम से कम संतान उत्पन्न करे। अधिक संतान उत्पन्न होने से माताएँ दुर्बलताग्रस्त होकर अकाल ही काल कवलित हो जाती हैं। बच्चे कमजोर होते हैं और ठीक प्रकार पोषण न होने पर अस्वस्थता एवं अकाल मृत्यु के ग्रास बनते हैं। शिक्षा और विकास की समुचित सुविधा न होने से बालक भी अविकसित रह जाते हैं। इसलिए संतान को न्यूनतम रखने का प्रयास किया जाए। लोग ब्रह्मचर्य से रहें अथवा परिवार नियोजन विशेषज्ञों की सलाह लें। संतान के उत्तरदायित्वों एवं चिंताओं से जो व्यक्ति जितने हलके होंगे, वे उतने ही नीरोग रहेंगे, यह तथ्य हर सद्गृहस्थ भली प्रकार समझ सके, इसी में उसका कल्याण है।

२०. प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी-पंच तत्त्वों से रोग निवारण की प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए। जगह-जगह ऐसे चिकित्सालय रहें। इनमें उपवास, एनिमा, जल चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, मिट्टी, भाप आदि साधनों की सहायता से शरीर का कल्प जैसा शोधन होता है और एक रोग की ही नहीं, समस्त रोगों की जड़ ही कट जाती है। सर्वसाधारण को इस पद्धति का इतना ज्ञान करा दिया जाए कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी तथा अपने घर के लोगों की चिकित्सा स्वयं ही कर लिया करें।

यह सभी प्रयत्न ऐसे हैं, जो सामूहिक रूप से ही प्रसारित किए जा सकते हैं। इन्हें आंदोलन का रूप मिलना चाहिए और इनका संचालन अखण्ड ज्योति परिवार के सम्मिलित प्रयत्नों से होता रहना चाहिए।

अशिक्षा का अंधकार दूर किया जाए

जीवन को सुविकसित करने के लिए जिस मानसिक विकास की आवश्यकता है, उसके लिए शिक्षा की भारी आवश्यकता होती है। माना कि शिक्षा प्राप्त करके भी कितने ही लोग उसका सदुपयोग नहीं करते। इस

बुराई के रहते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि मानसिक विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। ज्ञान का प्रकाश अंतरात्मा में शिक्षा से ही पहुँचता है। भौतिक विकास के लिए भी शिक्षा की आवश्यकता अनिवार्य रूप से अनुभव की जाती है। खेद की बात है कि देश में अभी तक चौथाई जनता भी साक्षर नहीं हो पाई है। युग परिवर्तन के लिए ऐसा प्रबल प्रयत्न करना चाहिए कि कोई वयस्क व्यक्ति निरक्षर न रहे। इस संबंध में दस कार्यक्रम नीचे प्रस्तुत हैं-

२१. बच्चों को स्कूल भिजवाया जाए-जो बच्चे स्कूल जाने योग्य हैं, उन्हें पाठशालाओं में भिजवाने के लिए उनके अभिभावकों को सहमत करना चाहिए। जिन्होंने पढ़ना छोड़ दिया है, उन्हें फिर पाठशला में प्रवेश करने या प्राइवेट पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। वयस्कों को इसके लिए तैयार किया जाए कि वे प्रौढ़ पाठशालाओं में पढ़ने लगें। परिवार के साक्षर लोग मिलकर अपने घर की नारियों या अन्य अशिक्षितों को शिक्षा का महत्त्व समझाते हुए उन्हें पढ़ने के लिए रजामंद करें।

२२. शिक्षितों की पत्नी अशिक्षित न रहें-शिक्षितों को इसके लिए तैयार किया जाए कि वे अपने घर के निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए उन्हें समझाएँ, सहमत करें और पढ़ाने के लिए स्वयं नियमित रूप से समय निकालें। स्त्रियाँ अधिकांश घरों में अशिक्षित या स्वल्प शिक्षित होती हैं। शिक्षित पतियों का परम पवित्र धर्म कर्त्तव्य यह है कि पत्नी को सच्चे अर्थों में अर्धांगिनी बनाने के लिए उन्हें शिक्षित बनाने का प्रयत्न करें। स्वयं न पढ़ा सकें, तो दूसरे माध्यम से उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध करें।

२३. प्रौढ़ पाठशालाओं का आयोजन-सेवाभावी शिक्षित लोग मिल-जुलकर गाँव-गाँव और मुहल्ले में रात्रि को फुरसत के समय चलने वाली प्रौढ़ पाठशालाएँ स्थापित करें। अशिक्षितों को समझा बुझाकर उनमें भर्ती कराना और प्रेमपूर्वक पढ़ाना उन सरस्वती पुत्रों का काम होना चाहिए। धन उसी का धन्य है, जो दूसरों की सुविधा बढ़ाने में काम आए। शिक्षा उसी की धन्य है, जो दूसरे अशिक्षितों को शिक्षित बनाने में प्रयुक्त हो। जिस प्रकार अशिक्षितों को पढ़ने के लिए सहमत और तत्पर करना एक

बड़ा काम है, उसी प्रकार शिक्षा की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए नित्य नियमित रूप से कुछ समय देते रहने वाले सेवाभावी सज्जनों को तैयार करना और फिर उनके उत्साह को बनाये रहना एक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। दोनों ही वर्गों को प्रेरणा देकर जगह-जगह प्रौढ़ पाठशालाएँ चालू कराई जानी चाहिए।

२४. प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था-महिलाओं की प्रौढ़ पाठशालाएं चलाने का समय दिन ढलते तीसरे पहर का ठीक रहता है। घर गृहस्थी के काम से निवृत्त होकर महिलाएँ तीसरे पहर, प्रायः दो से चार बजे तक फुरसत में होती हैं। उनकी पाठशालाएँ उसी समय चलें। अच्छा हो शिक्षित महिलाएँ ही नारी शिक्षा का कार्य अपने हाथ में लें, पर यदि वैसा न हो सके, तो १५-१६ वर्ष से कम आयु के प्रतिभावान् लड़के अथवा वयोवृद्ध सज्जन इसके लिए उपयुक्त रह सकते हैं।

२५. शिक्षा के साथ दीक्षा भी-प्रौढ़ शिक्षा के लिए एक व्यवस्थित पाठ्यक्रम बनाया जाए, इसके लिए ऐसी पुस्तकें उपयोग में लाई जाएँ, जो ज्ञान दीक्षा पूरा करती हों। अक्षर ज्ञान के साथ-साथ मानव जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालने वाले पाठ पुस्तकों में रहें। विचार क्रान्ति, नैतिक उत्कर्ष एवं युग निर्माण की विचारधारा इन पाठ्य पुस्तकों में आ जाए। शिक्षक पढ़ाते समय शिक्षार्थियों से उन पाठों में आए हुए विषयों पर विचार विनिमय भी किया करें। समाजशास्त्र, नागरिक शास्त्र, स्वास्थ्य, धर्म-सदाचार, राजनीति, विश्व परिचय आदि की मोटी-मोटी जानकारियों का इस शिक्षण में ऐसा समावेश रहे कि शिक्षार्थी आज की परिस्थितियों से, वर्तमान युग से और मानव जाति के सामने प्रस्तुत समस्याओं से भली प्रकार परिचित हो सके।

२६. नये स्कूलों की स्थापना-जहाँ स्कूलों की आवश्यकता है, वहाँ उसकी पूर्ति के लिए प्रयत्न किए जाएँ, जनसहयोग से नए विद्यालयों की स्थापना तथा आरम्भ करके पीछे उन्हें सरकार के सुपुर्द कर देने की पद्धति अच्छी है। स्कूल की इमारतों के लिए खाली जमीनें या मकान लोगों से बिना मूल्य प्राप्त करना या जन सहयोग से नये सिरे से बनाना,

उत्साही प्रयत्नशील लोगों की प्रेरणा से सुविधापूर्वक हो सकता है। अध्यापकों का खर्च भी फीस की तरह सहायता देकर लोग आसानी से चला सकते हैं। धनीमानी लोग इस दिशा में कुछ विशेष उत्साह दिखा सकें, ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए।

२७. रात्रि पाठशाला चलाई जाएँ-ऐसी रात्रि पाठशालाएँ भी चलाई जाएँ, जिनमें साधारण पढ़े-लिखे कामकाजी लोग अपनी शिक्षा को आगे बढ़ा सकें। स्वल्प शिक्षित लोग जो अपनी पढ़ाई समाप्त कर चुके हैं और काम-काज में लग गए हैं, उनके लिए शिक्षा संबंधी उन्नति के द्वार प्रायः रुके ही पड़े रहते हैं। इस कठिनाई को दूर किया जाना चाहिए। निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए जिस प्रकार प्रारंभिक शिक्षा आवश्यक है, उसी प्रकार स्वल्प शिक्षितों को सुशिक्षित बनाने के लिए ऐसे प्रयत्न भी चलने चाहिए, जिनमें रात्रि को फुरसत के समय दो घंटे पढ़ने की सुविधा प्राप्त कर लोग आगे उन्नति कर सकें। प्राइवेट पढ़कर परीक्षा देने की सुविधा कई सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में होती है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुरुषों के लिए और महिला विद्यापीठ की परीक्षाएँ स्त्रियों के लिए उपयोगी रहती हैं। प्राइमरी, मिडिल और हाई स्कूल तक की प्राइवेट परीक्षाएँ सरकारी शिक्षा विभाग भी स्वीकार कर लेता है। जहाँ जैसी सुविधा हो, वहाँ उसी प्रकार की ऐसी पाठशालाएँ चलें। ऐसी पाठशालाओं का खर्च चलाने के लिए छात्रों से फीस भी ली जा सकती है।

२८. शिक्षित ज्ञान-ऋण चुकाएँ-शिक्षित लोग पाँच व्यक्तियों को शिक्षित करना अपना एक ज्ञान-ऋण जैसा उत्तरदायित्व मानें और उसे चुकाने के लिए प्रतिज्ञाएँ लेकर जुट जाएँ, ऐसा लोकशिक्षण करना चाहिए। जिस प्रकार धनी लोग कुछ दान पुण्य करते रहते हैं, उसी प्रकार शिक्षा रूपी धन से भी दान-पुण्य करने की प्रथा आरम्भ करनी चाहिए।

तीर्थयात्रा करके जब तक कोई व्यक्ति घर आकर कुछ दान-पुण्य, कथा-ब्रह्मभोज नहीं करता, तब तक उसकी तीर्थ यात्रा सफल नहीं मानी जाती। इसी प्रकार ज्ञान ऋण चुकाये बिना किसी की शिक्षा को सफल एवं

सार्थक न माने जाने की मान्यता जाग्रत् की जाए। सरकारी टैक्स या उधार लिया हुआ कर्जा चुकाया जाना जिस प्रकार आवश्यक माना जाता है, उसी प्रकार हर शिक्षित पाँच अशिक्षितों को शिक्षित बनाने के लिए समयदान या धन दान देकर अपने को ऋणमुक्त करने का प्रयत्न करें। जो लोग समय नहीं दे सकते, वे धन देकर अध्यापकों के वेतन के लिए दान दिया करें और इस प्रकार भी ज्ञान ऋण चुक सकता है।

२९. पुस्तकालय और वाचनालय-पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना की जाए। उनमें केवल ऐसी चुनी हुई पुस्तकें या पत्र-पत्रिकाएँ ही मँगाई जाएँ, जो जीवन निर्माण की सही दिशा में प्रेरणा दे सकें। अश्लील, जासूसी, भद्दी-भौंडी विचारधारा देने वाली या मनोरंजन मात्र का उद्देश्य पूरा करके समय नष्ट करने वाली, भ्रम उत्पन्न करने वाली पुस्तकें संख्या की अधिकता के मोह में भूलकर भी इन पुस्तकालयों में जमा न की जाएँ। भोजन में जो स्थान विषाक्त खाद्य पदार्थों का है, वही पुस्तकालयों में गंदे साहित्य का है। इस शुद्धि का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए चुनी हुई पुस्तकों के वाचनालय, पुस्तकालय स्थापित किए जाएँ। उनका खर्च पढ़ने वालों से कुछ शुल्क लेकर या चंदा से पूरा किया जाए। जिनके यहाँ अच्छी पुस्तकें जमा हैं या पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं, उनसे वह पुस्तकें उधार भी माँगी जा सकती हैं और इस प्रकार प्रयत्न करने से भी पुस्तकालय, वाचनालय चल सकते हैं। लोकशिक्षण के लिए इनकी भी बड़ी आवश्यकता है।

३०. अध्ययन की रुचि जगाएँ-पढ़ने की अभिरुचि उत्पन्न करना, युग निर्माण की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। आमतौर से स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद लोग पुस्तकों को नमस्कार कर लेते हैं और अपने काम-धंधे को ही महत्त्व देते हैं। उनकी दृष्टि में पुस्तकें-पत्रिकाएँ आदि पढ़ना, ताश खेलने की तरह समय को व्यर्थ गँवाने वाला मनोरंजन मात्र होता है। इस मान्यता को हटाया ही जाना चाहिए और निरक्षरता की भाँति ज्ञान वृद्धि की उपेक्षा से भी प्रबल संघर्ष आरंभ करना चाहिए। जनमानस में यह बात गहराई तक प्रवेश कराई जानी चाहिए कि

पेट को रोटी देने की भाँति बुद्धि को ज्ञानवर्द्धन साहित्य की आवश्यकता है। उसकी उपेक्षा करने पर आंतरिक विकास की समस्या हल नहीं हो सकती है।

घर-घर जाकर पढ़ने में अभिरुचि उत्पन्न करना, पुस्तकें पढ़ने का महत्त्व बताना और फिर उन्हीं के निवास स्थानों पर उपयोगी पुस्तकें पहुँचाना एक बहुत बड़ा काम है। चलते-फिरते पुस्तकालयों का यही रूप रहे कि ज्ञान प्रचारक लोग अपने झोले में कुछ पुस्तकें रखकर घर से निकला करें और जनसंपर्क बढ़ाकर जिनमें अभिरुचि उत्पन्न हो जाए, उन्हें पुस्तकें पढ़ने देने तथा वापस लेने जाया करें। चाय का प्रसार इसी प्रकार घर-घर जाकर मुफ्त में चाय पिलाकर प्रारंभिक प्रचारकों ने किया था। अब तो चाय की आदत इतनी बढ़ गई है कि पीने वाले हड़बड़ाते फिरा करते हैं। इसी प्रकार की अभिरुचि सत्साहित्य पढ़ने और स्वाध्याय को नित्य-नियमित रूप से करते रहने के लिए उत्पन्न हो सके, ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस प्रवृत्ति की अभिवृद्धि पर युग निर्माण योजना की सफलता बहुत कुछ निर्भर रहेगी।

शिक्षा प्रसार आवश्यक है। मानसिक उत्कर्ष के लिए यह एक अनिवार्य कार्य है। इसके बिना देश आगे नहीं बढ़ सकता। विचार क्रान्ति के उद्देश्य की पूर्ति लोक शिक्षण पर ही निर्भर है और वह कार्य शिक्षा प्रसार से ही होगा। हमें इसके लिए जी जान से जुटना चाहिए।

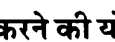

जनमानस को धर्म दीक्षित करने की योजना

ज्ञान को उपनिषदों में अमृत कहा गया है। जीवन को ठीक प्रकार जीने और सही दृष्टिकोण अपनाये रहने के लिए प्रेरणा देते रहना और श्रद्धा स्थिर रखना यही ज्ञान का उद्देश्य है। जिन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया उनका मनुष्य जन्म धन्य हो गया। शिक्षा का उद्देश्य भी ज्ञान की प्राप्ति ही है। सद्ज्ञान को ही विद्या या दीक्षा कहते हैं। इसे यह संपत्ति प्राप्त हो गई, उसे और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता।

जीवन में ज्ञान को कैसे धारण किया जाए और उसे व्यापक कैसे बनाया जाए, इस संबंध में कुछ कार्यक्रम नीचे प्रस्तुत हैं-

३१. आस्तिकता की आस्था-आस्तिकता में गहरी निष्ठा मन में जमी रहने से मनुष्य अनेक दुष्कर्मों से बच जाता है और उसकी आंतरिक प्रगति सन्मार्ग की ओर उन्मुख होती रहती है। परमात्मा को सर्वव्यापक और न्यायकारी मानने से छुपकर पाप करना भी कठिन हो जाता है। राजदण्ड से बचा जा सकता है, पर सर्वज्ञ ईश्वर के दण्ड से चतुरता करने वाले भी नहीं बच सकते। यह विश्वास जिनमें स्थिर रहेगा, वे कुमार्ग से बचेंगे और सत्कर्मों द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने और उसकी कृपा प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहेंगे। आस्तिकता, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को सुख-शान्तिमय बनाये रहने का अचूक साधन है। उसे हर व्यक्ति अपने अंत:करण में गहराई तक प्रतिष्ठित रखे यह प्रयत्न करना चाहिए।

चाहे कितना ही व्यस्त कार्यक्रम क्यों न हो, प्रात: सोकर उठने और रात को सोते समय कम से कम १५-१५ मिनट सर्वशक्तिमान्-न्यायकारी परमात्मा का ध्यान करना चाहिए और उससे सद्विचारों एवं सत्कर्मों की प्रेरणा के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। इतनी उपासना तो प्रत्येक व्यक्ति करने ही लगे। जिन्हें कुछ सुविधा और श्रद्धा अधिक हो, तो वे नित्य नियमपूर्वक स्नान करकेउपासना स्थल पर गायत्री महामंत्र का जप किया करें। अन्य देवताओं विधानों से उपासना करने वाले भी कुछ गायत्री मंत्र अवश्य जप कर लिया करें। इससे आत्मिक प्रगति में बड़ी सहायता मिलती है।

३२. स्वाध्याय की साधना-जीवन निर्माण की आवश्यक प्रेरणा देने वाला सत्साहित्य नित्य नियमपूर्वक पढ़ना ही चाहिए। स्वाध्याय को भी साधना का ही एक अंग माना जाए और कुछ समय इसके लिए नियत रखा जाए। कुविचारों को शमन करने के लिए नित्य सद्विचारों का सत्संग करना आवश्यक है। व्यक्ति का सत्संग तो कठिन पड़ता है, पर साहित्य के माध्यम से संसार भर के जीवित या मृत सत्पुरुषों के साथ सत्संग किया जा सकता है। यह जीवन का महत्त्वपूर्ण लाभ है, जिससे किसी को भी वंचित

नहीं रहना चाहिए। जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, उन्हें दूसरों से सत्साहित्य पढ़ाकर सुनने की व्यवस्था करनी चाहिए।

३३. संस्कारित जीवन-जीवन को समय-समय पर संस्कारित करने के लिए हिन्दू धर्म में षोडश संस्कारों का महत्त्वपूर्ण विधान है। पारिवारिक समारोह के उत्साहपूर्ण वातावरण में सुव्यवस्थित जीवन की शिक्षा इन अवसरों पर मनीषियों द्वारा दी जाती है और अग्नि देव तथा देवताओं की साक्षी में इन नियमों पर चलने के लिए प्रतिज्ञा कराई जाती है, तो उसका ठोस प्रभाव पड़ता है। पुंसवन, सीमन्त, नामकरण, मुण्डन, अन्नप्राशन, विद्यारंभ, यज्ञोपवीत, विवाह, वानप्रस्थ, अन्त्येष्टि आदि संस्कारों का कर्मकाण्ड बहुत ही शिक्षा और प्रेरणा से भरा हुआ है। यदि उन्हें ठीक तरह किया जाए, तो हर व्यक्ति पर गहरा प्रभाव पड़े।

खेद है कि संस्कारों के कर्मकाण्ड अब केवल चिह्न पूजा मात्र रह गये हैं। उनमें खर्च तो बहुत होता है, पर प्रेरणा कुछ नहीं मिलती। हमें संस्कारों का महत्त्व जानना चाहिए और कराने की विधि तथा शिक्षा को सीखना-समझना चाहिए। संस्कारों का पुनः प्रसार किया जाए और उनके कर्मकाण्ड इस प्रकार किये जाएँ कि कम से कम खर्च में अधिक से अधिक प्रेरणा प्राप्त कर सकना सर्वसुलभ हो सके।

३४. पर्व और त्यौहार का संदेश-जिस प्रकार व्यक्तिगत नैतिक प्रशिक्षण के लिए संस्कारों की उपयोगिता है, उसी प्रकार सामाजिक सुव्यवस्था की शिक्षा, पर्व और त्यौहारों के माध्यम से दी जाती है। हर त्यौहार के साथ महत्त्वपूर्ण आदर्श और संदेश सन्निहित हैं, जिन्हें हृदयंगम करने से जनसाधारण को अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का ठीक तरह बोध हो सकता है और उन्हें पालन करने की आवश्यक प्रेरणा मिल सकती है।

त्यौहारों के मनाये जाने के सामूहिक कार्यक्रम बनाये जाया करें और उनके विधान, कर्मकाण्ड ऐसे रहें, जिनमें भाग लेने के लिए सहज ही आकर्षण हो और इच्छा जगे। सब लोग इकट्ठे हों, पुरोहित लोग उस पर्व का संदेश सुनाते हुए प्रवचन करें और उस संदेश में जिन प्रवृत्तियों की प्रेरणा है, उन्हें किसी न किसी रूप से कार्यान्वित भी किया जाया करे।

संस्कारों और त्यौहारों को कैसे मनाया जाए और उपस्थित लोगों को क्या सिखाया जाए, इसकी शिक्षा व्यवस्था शान्तिकुंज हरिद्वार में है, उसे सीखकर अपने संबद्ध समाज में इन पुण्य प्रक्रियाओं को प्रचलित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

३५. जन्मदिन समारोह-हर व्यक्ति का जन्म दिवस मनाया जाए। उसके स्वजन संबंधी बधाई और शुभकामनाएँ दिया करें। एक छोटा जन्मोत्सव मनाया जाया करे, जिसमें वह व्यक्ति आत्म निरीक्षण करते हुए शेष जीवन को और भी अधिक आदर्शमय बनाने के लिए कदम उठाया करें। बधाई देने वाले लोग भी कुछ ऐसे ही प्रोत्साहन उसे दिया करें। हर जन्मदिन जीवन शोधन की प्रेरणा का पर्व बने, ऐसी प्रथा-परम्पराएँ प्रचलित की जानी चाहिए।

३६. व्रतशीलता की धर्म धारणा-प्रत्येक व्यक्ति व्रतशील बने, इसके लिए व्रत आंदोलन को जन्म दिया जाना चाहिए। भोजन, ब्रह्मचर्य, अर्थोपार्जन, दिनचर्या, खर्च का निर्धारित बजट, स्वाध्याय, उपासना, व्यायाम, दान, सोना, उठना आदि हर कार्य की निर्धारित करके उसका कड़ाई के साथ पालन करने की आवश्यकता हर व्यक्ति अनुभव करे, ऐसा लोकशिक्षण किया जाए। बुरी आदतों को क्रमशः घटाते चलना और सद्गुणों को निरन्तर बढ़ाते चलना भी इस आंदोलन का एक अंग रहे। साधनामय, संयमी और मर्यादित जीवन बिताने की कला हर व्यक्ति को सिखाई जाए ; ताकि उसके लिए प्रगतिशील हो सकना संभव हो सके।

३७. मंदिरों को प्रेरणा केन्द्र बनाया जाए-मंदिर, मठों को नैतिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाया जाए। इतनी बड़ी इमारतों में प्रौढ़ पाठशालाएँ , रात्रि पाठशालाएँ , कथा कीर्तन, प्रवचन, उपदेश, पर्व-त्यौहारों के सामूहिक आयोजन, यज्ञोपवीत, मुण्डन आदि संस्कारों के कार्यक्रम, औषधालय, पुस्तकालय, संगीत, शिक्षा, आसन, प्राणायाम, व्यायाम की व्यवस्था, व्रत आंदोलन जैसी युग निर्माण की नेक गतिविधियों को चलाया जा सकता है। भगवान् की सेवा-पूजा करने वाले व्यक्ति ऐसे हों, जो बचे हुए समय का उपयोग मंदिर को धर्म प्रवृत्तियों का

केन्द्र बनाये रहने और उनका संचालन करने में लगाया करें। प्रतिमा की आरती, पूजा, भोग, प्रसाद की तरह ही जन सेवा के कार्यक्रमों को भी यज्ञ माना जाना चाहिए और उनके लिए मंदिरों के संचालकों एवं कार्यकर्त्ताओं से अनुरोध करना चाहिए कि मंदिरों को उपासना के साथ-साथ धर्म सेवा का भी केन्द्र बनाया जाए।

३८. युग निर्माण के ज्ञान मंदिर-जगह-जगह ऐसे केन्द्र स्थापित किए जाएँ, जिनका स्वरूप ज्ञान-मंदिर जैसा हो। सद्भावना और सत्प्रवृत्ति की प्रतीक गायत्री माता का सुंदर चित्र इन केन्द्रों में स्थापित करके प्रातः-साायं पूजा, आरती, भजन, कीर्तन की व्यवस्था करके इन केन्द्रों में मंदिर जैसा धार्मिक वातावरण बनाया जाए। उसमें पुस्तकालय, वाचनालय रहें। सदस्यों के नित्य प्रति मिलने-जुलने, पढ़ने-सीखने और विचार विनिमय करने एवं रचनात्मक कार्यों की योजनाएँ चलाने के लिए इसे एक क्लब या मिलन मंदिर का रूप दिया जाए। योजना की स्थानीय प्रवृत्तियों के संचालन के लिए इस प्रकार के केन्द्र कार्यालय हर जगह होने चाहिए।

३९. साधु-ब्राह्मण भी कर्त्तव्य पालें-पंडित, पुरोहित, ग्राम-गुरु, पुजारी, साधु, महात्मा, कथावाचक आदि धर्म के नाम पर आजीविका चलाने वाले व्यक्तियों की संख्या भारतवर्ष में ८० लाख है। इन्हें जनसेवा एवं धर्म प्रवृत्तियों को चलाने के लिए प्रेरणा देनी चाहिए। इसाई धर्म में करीब एक लाख पादरी हैं, जिनके प्रयत्न से संसार की तीन अरब आबादी में से करीब एक अरब लोग ईसाई बन चुके हैं। इधर लाखों संत-महन्तों के होते हुए भी हिन्दू धर्म की संख्या और उत्कृष्टता दिन-दिन गिरती जा रही है, यह दुःख की बात है। इस पुरोहित वर्ग को समय के साथ बदलने और जनता से प्राप्त होने वाले मान एवं निर्वाह के बदले कुछ प्रत्युपकार करने की बात सुझाई-समझाई जाए। इतने बड़े जनसमाज को केवल आडम्बर के नाम पर समय और धन नष्ट करते हुए नहीं रहने देना चाहिए। यदि यह प्रयत्न सफल नहीं होता है, तो धर्म प्रचार के उत्तरदायित्व को हम लोग मिल जुलकर कंधों पर उठाएँ, हम में से हर व्यक्ति धर्म प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाने के लिए कुछ समय नियमित

रूप से दिया करें।

४०. वानप्रस्थ का पुनर्जीवन-जिन्हें पारिवारिक उत्तरदायित्वों से छुटकारा मिल चुका है, जो रिटायर्ड हो चुके हैं या जिनके घर में गुजारे के आवश्यक साधन मौजूद हैं, अपना अधिकांश समय लोकहित और परमार्थ के लिए लगाने की प्रेरणा उत्पन्न हो, ऐसे प्रयत्न किये जाएँ। वानप्रस्थ आश्रम पालन करने की प्रथा अब लुप्त हो गई है। उसे पुनर्जीवित किया जाए। ढलती आयु में गृहस्थी के उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर लोग घर में रहते हुए लोकसेवा में अधिक समय दिया करें तो संत-महात्माओं और ब्राह्मण-पुरोहितों का आवश्यक उत्तरदायित्व किसी प्रकार अन्य लोग अपने कंधे पर उठाकर पूरा कर सकते हैं। वानप्रस्थ की पुण्य परम्परा का पुनर्जागरण युग निर्माण की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है।

सभ्य समाज की स्वस्थ रचना

सामाजिक सुव्यवस्था के लिए हमें अपना वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन भी ऐसा बनाना चाहिए कि उसका सत्प्रभाव सारे समाज पर पड़े। इसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था में जहाँ व्यतिक्रम उत्पन्न हो गया है, उसे सुधारना चाहिए। स्वस्थ परम्पराओं को सुदृढ़ बनाने और अस्वस्थ प्रथाओं को हटाने का ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि सभ्य समाज की रचना का लक्ष्य पूर्ण हो सके, नीचे कुछ ऐसे ही कार्यक्रम दिये गये हैं-

४१. सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा-सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। व्यक्ति अपने आपको संकीर्ण दायरे तक ही सीमित न रखे। स्त्री-बच्चों को ही अपना न माने; वरन् भाई, माता-पिता एवं अन्य सम्बद्ध कुटुम्बियों की प्रगति एवं सुव्यवस्था का भी आत्मीयतापूर्ण ध्यान रखना चाहिए। सब लोग मिल-जुलकर रहें, एक दूसरे की सहायता करें, सहनशीलता, सहिष्णुता, त्याग और उदारता की सद्वृत्तियों को बढ़ाएँ, यही आत्म विकास की श्रेष्ठ परम्परा है। स्वार्थ को परमार्थ में परिणत करने की परम्परा सम्मिलित कुटुम्ब में ही संभव है। अशान्ति और मनोमालिन्य उत्पन्न करने वाले कारणों को हटाना चाहिए, किन्तु मूल

आधार को नष्ट नहीं करना चाहिए। समाजवाद का प्राथमिक रूप सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा ही है, उसे सुविकसित करना ही श्रेष्ठ है।

४२. पारिवारिक विचार गोष्ठी-प्रत्येक परिवार में नित्य विचार गोष्ठी के रूप में सत्संग क्रम चला करे। कथा-कहानी, पुस्तकें पढ़कर सुनाना सामयिक समाचारों की चर्चा करते हुए जीवन की विभिन्न समस्याओं के सुलझाने का प्रशिक्षण करना चाहिए। बड़ों के चरण छूकर प्रणाम करने और छोटों का भी तू न कहकर तुम या आप कहने की शिष्ट परम्पराएँ हर परिवार में चलनी चाहिए। हर घर में उपासना कक्ष हो, जहाँ बैठकर कम से कम दस मिनट घर का हर सदस्य उपासना किया करे। घरेलू पुस्तकालय से विहीन कोई घर न रहे। जिन्दगी कैसे जिएँ और नित्य प्रति सामने आती रहने वाली गुत्थियों को सुलझाने के लिए संजीवनी विद्या का साहित्य बचपन से ही पढ़ा और सुना जाना चाहिए। उपासना, स्वाध्याय और सत्संग की नियमित व्यवस्था रहे, तो उसका प्रतिफल सुखी परिवारों के रूप में सामने आएगा और सभ्य समाज की रचना का उद्देश्य आसानी से पूर्ण होगा।

४३. सत्प्रवृत्ति का अभ्यास-परिवारों में पारस्परिक सहयोग, सभी का परिश्रमी होना, टूटी, पुरानी वस्तुओं की मरम्मत और सदुपयोग, कोने-कोने में सफाई, वस्त्रों के धोने का काम अधिकांश घर में होना, सभी सदस्यों का नियमित व्यायाम, घरेलू झगड़ों को सुलझाने की व्यवस्था, शिक्षा में सभी की अभिरुचि, स्वावलम्बन और बौद्धिक विकास के लिए सतत प्रयत्न मितव्ययिता और सादगी, कपड़ों की सिलाई आदि गृह उद्योगों का सूत्रपात, लोकहित के लिए नित्य नियमित दान जैसे अनेक कार्यक्रम घर की प्रयोगशाला में चलाये जा सकते हैं। यही प्रशिक्षण बड़े रूप में विकसित हो, तो सारा समाज सभ्य और सुसंस्कृत बन सकता है।

४४. संतान और उसकी जिम्मेदारी-नई पीढ़ी का निर्माण एक परम पवित्र और समाज सेवा का श्रेष्ठ साधन माना जाए। संतानोत्पादन को विलास का नहीं, राष्ट्रीय कर्त्तव्य की पूर्ति का एक देशभक्ति पूर्ण कार्य माना जाए। इसके लिए माता-पिता अपनी शारीरिक, मानसिक और

आर्थिक तैयारी बहुत पहले से ही आरंभ करें। जो गुण-दोष माता-पिता में होते हैं, वही संतान में आते हैं, इसलिए पति-पत्नी अपने सद्‌गुणों को ऊँची से ऊँची स्थिति तक चढ़ावें और अत्यन्त प्रेम एवं आत्मीयता से रहें। इसी एकता की उत्कृष्टता पर बालक का आंतरिक विकास निर्भर रहता है। परस्पर द्वेष, अविश्वास एवं कलह रखने वाले माता-पिता दुष्टात्मा संतान को ही जन्म देते हैं। गर्भावस्था में माता की भावनाएँ जिस प्रकार की रहती हैं, वे ही संस्कार बच्चे में आते हैं। बालकों की शिक्षा माता के गर्भकाल से तो आरंभ हो ही जाती है, वस्तुतः वह इससे भी बहुत पहले होती है। माता-पिता के गुण, कर्म, स्वभाव, स्वास्थ्य, मनोभाव, बौद्धिक स्तर का प्रभाव बालकों पर आता है। इसलिए सभ्य पीढ़ी उत्पन्न करने की क्षमता विचारशील पति-पत्नी को वैवाहिक जीवन के आरंभ से ही प्राप्त करने में लग जाना चाहिए। अधिक ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए और दाम्पत्य जीवन को प्रत्येक दृष्टि से आदर्श बनाना चाहिए।

४५. सत्कार्यों का अभिनंदन-प्रतिष्ठा की भूख स्वाभाविक है। मनुष्य को जिस कार्य में बड़प्पन मिलता है, वह उसी ओर झुकने लगता है। आज धन और पद को सम्मान मिलता है, तो लोग उस दिशा में आकर्षित हैं, यदि यह मूल्यांकन बदल जाए और ज्ञानी, त्यागी एवं पराक्रमी लोगों को सामाजिक प्रतिष्ठा उपलब्ध होने लगे, तो इस ओर भी लोगों का ध्यान आएगा और समाज में सत्कर्म करने की प्रगति बढ़ेगी। हमें चाहिए कि ऐसे लोगों को मान देने के लिए, सार्वजनिक अभिनंदन करने के लिए समय-समय पर आयोजन करते रहें। मानपत्र भेंट करना, सार्वजनिक अभिनंदन, पदक-उपहार, समाचार पत्रों में उन सत्कर्मों की चर्चा, फोटो, चरित्र पुस्तिका आदि का प्रकाशन हम लोग कर सकते हैं। उन सत्कर्म कर्त्ताओं को इसकी इच्छा न होना ही उचित है, पर दूसरों को प्रोत्साहन देने और वैसे ही अनुकरण की इच्छा दूसरों में जाग्रत् हो, इस दृष्टि से सत्कर्मों के अभिनंदन की परम्परा प्रचलित करना ही चाहिए। ऐसे आयोजन हलके कारणों को लेकर या झूठी प्रशंसा में न किये जाएँ, अन्यथा ईर्ष्या-द्वेष की दुर्भावनाएँ बढ़ेंगी। सभ्य समाज का निर्माण करने के लिए धन एवं

शक्ति को नहीं, आदर्श को ही सम्मान मिलना चाहिए।

४६. सज्जनता का सहयोग-यदि मानवता का स्तर ऊँचा उठा हो, तो सज्जनता के साथ सहयोग की नीति अपनाई जानी चाहिए। सज्जनता को यदि सहयोग और प्रोत्साहन न मिले, तो वह मुरझा जाएगी। इसी प्रकार दुष्टता का विरोध न किया गया, तो वह दिन-दिन बढ़ती चली जाएगी। इसलिए प्रत्येक सभ्य नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह अपनी नीति ऐसी रखे जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष में सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि होती रहे और अनीति को निरुत्साहित होना पड़े। परिस्थितिवश यदि दुष्टता का पूर्ण प्रतिरोध संभव न हो, इसमें अपने लिए खतरा दीखता हो, तो कम से कम इतना तो करना ही चाहिए कि उनकी हाँ में हाँ मिलाने, संपर्क रखने या साथ में रहने से बचा जाए, क्योंकि इससे दूसरे प्रतिरोध करने वाले की हिम्मत टूटती है और अनीति का पक्ष मजबूत होता है। संभव हो तो तीव्र संघर्ष करें, न संभव हो तो दुष्टता में असहयोग तो हर हालत में करने का साहस रखना ही चाहिए।

४७. नैतिक कर्त्तव्यों का पालन-नैतिक एवं नागरिक कर्त्तव्यों का पालन, सामाजिक स्वस्थ परम्पराओं का समर्थन, धर्म और नीति के आधार पर आचरण, शिष्ट व्यवहार, वचन का पालन, सहयोग और उदारता का अवलम्बन, ईमानदारी और श्रम उपार्जित कमाई पर संतोष, सादगी और सच्चाई का जीवन-ऐसे ही सद्गुणों को अपनाना चाहिए। मानवता की रीति-नीति को अपना कर हमें सदा सन्मार्ग पर ही चलना चाहिए, भले ही इसमें अभावों, असुविधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़े। आलसी नहीं बनना चाहिए और न समय का एक क्षण भी बर्बाद करना चाहिए। श्रम और समय का सदुपयोग यही सफलता के माध्यम है। जुआ, चोरी, बेईमानी, रिश्वत, मिलावट, धोखेबाजी जैसे अवांछनीय उपायों से कमाई करके बड़ा आदमी बनने की अपेक्षा ईमानदारी को अपनाकर गरीबी का जीवन बिताना श्रेयस्कर समझना चाहिए। इसी अवस्था और गतिविधि को अपनाकर हम अपना और समाज का उत्थान कर सकते हैं, यह भली प्रकार समझ लिया जाए।

४८. सहयोग और सामूहिकता-सहयोगपूर्वक, मिल-जुलकर सम्मिलित कार्यक्रम को बढ़ाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। आर्थिक क्षेत्र में सहयोग समितियों के आधार पर व्यापारिक, औद्योगिक एवं उत्पादन के कार्यों को विकसित किया जाए। इसमें पूँजी की कठिनाई रहती है। बड़े पैमाने पर कार्य होने से चीजें सस्ती एवं अच्छी तैयार होती हैं। इससे उत्पादकों को भी लाभ मिलता है। उपभोक्ताओं की भी सुविधा बढ़ती है। कार्यकर्त्ताओं में पारस्परिक प्रेम भी बढ़ता है। व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा सामूहिक लाभ एवं संगठन की भावनाएँ विकसित होती हैं।

पारस्परिक सहयोग के आधार पर ही जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति हो सकती है। इसलिए सामूहिकता और संगठन के आधार पर संचालित प्रवृत्तियों में भाग लेना, योग देना और उन्हें बढ़ावा देना ही उचित है। सहयोग की नीति अपनाकर ही शिथिलता आने से सामाजिक पतन और तीव्रता आने से उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है। इस तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम करते हुए सहयोग एवं संगठन की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

४९. कंजूसी और विलासिता छूटे-धन का अनावश्यक संग्रह करने और देश के मध्यम स्तर से अधिक ऊँचा रहन-सहन बनाने को निरुत्साहित किया जाना चाहिए। इससे व्यक्तियों में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं और सामाजिक स्तर गिरता है। लोग कमाबेस तो सही पर उसका न्यूनतम उपयोग अपने लिए करके शेष को समाज के लिए लौटा दें। समाज में जबकि अनेक दीन-दुःखी, अभावग्रस्त और पिछड़े हुए व्यक्ति भरे पड़े हैं, अनेक समस्याएँ समाज को परेशान कर रही हैं, इन सबकी उपेक्षा करके अपने लिए अनावश्यक संग्रह मानवीय आदर्श के प्रतिकूल है।

संतान को सुशिक्षित और सुयोग्य बनाने के लिए प्रयत्न करना उचित है, पर उनको बैठे-ठाले, ब्याज-भाड़े की कमाई पर निकम्मी जिन्दगी काटने की व्यवस्था सोचना भारी भूल है। इससे संतान का अहित होता है। कई व्यक्ति संतान न होने पर अपने धन को लोकहित के कामों में न

लगाकर झूठी संतान ढूँढते हैं, दूसरों के बच्चों को गोद रखकर अपनत्व का बहकावा खड़ा करते हैं और उसी को जमा की हुई पूँजी देते हैं। ऐसी संकीर्णता जब तक बनी रहेगी, समाज कभी पनपेगा नहीं।

कमाई को लोकहित में लगाने का गर्व और गौरव अनुभव कर सकने की प्रवृत्ति को जगाया जाना आवश्यक है। लोग उदार और दानी बनेंगे, तो ही सत्प्रवृत्तियों का उत्पन्न होना और बढ़ना संभव होगा। कंजूसी को घृणित पाप और विलासिता को पाषाण हृदयों के योग्य निष्ठुरता माना जाए, ऐसा लोकशिक्षण करना चाहिए।

५०. श्रम का सम्मान–श्रम का सम्मान बढ़ाया जाए। बौद्धिक श्रम करने वालों को धन और यश अधिक मिलता है और शारीरिक श्रमिकों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस दृष्टिकोण में परिवर्तन होना चाहिए। शारीरिक श्रम एवं श्रमिकों को भी उचित सम्मान मिले। राजा जनक ने हल जोतकर अपनी जीविका कमाने का आदर्श रखा था और नसीरुद्दीन बादशाह टोपियाँ सींकर तथा कुरान लिखकर अपना गुजारा करता था।

हमारे समाज में सफाई करने वाले, कपड़े बुनने वाले, जूता बनाने वाले, कपड़े धोने वाले, इमारतें चिनने वाले, बोझा ढोने वाले, मजूरी करने वाले लोग इसीलिए नीच और अछूत माने गये कि वे शारीरिक श्रम करते हैं। थोड़ा सा अपना बोझ ले चलने में बेइज्जती अनुभव करना आज के शिक्षित एवं संपन्न कहे जाने वाले लोगों का स्वभाव बन गया है। ऐसे लोगों की स्त्रियाँ भोजन बनाने, बर्तन माँजने, झाड़ू लगाने, बिस्तर बिछाने जैसे कामों में बेइज्जती समझती और इन छोटे छोटे कामों के लिए नौकर चाहती हैं। अमीर लोग जूतों और कपड़े पहनाने का काम तक नौकरों से कराते हैं। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ किसी भी समाज के पतन का कारण होती हैं।

श्रम का सम्मान घटने से इस ओर लोगों की अरुचि हो जाती है। आरामतलबी को श्रेय मिले, तो सभी वैसा बनना चाहेंगे। प्रगति से सहयोग मिलता है, पर उसको साकार रूप तो श्रम से ही मिलता है। इसलिए श्रमिक को प्रोत्साहन भी मिलना चाहिए और सम्मान भी। हममें से हर व्यक्ति को शारीरिक दृष्टि से भी श्रमिक जैसी अपनी स्थिति और मनोभूमि

बनानी चाहिए। सामाजिक प्रगति का बहुत कुछ आधार 'श्रम के सम्मान' पर निर्भर है।

इन कुरीतियों को हटाया जाए

पिछले दो हजार वर्ष के अज्ञान से भरे अंधकारयुग में हमारी कितनी ही उपयोगी प्रथाएँ, रूढ़िवादिता से ग्रस्त होकर अनुपयोगी बन गई हैं। इन विकृतियों को सुधारकर हमें अपनी प्राचीन वैदिक सनातन स्थिति पर पहुँचने का प्रयत्न करना होगा, तभी भारतीय समाज का सुविकसित समाज जैसा रूप बन सकेगा। इस संबंध में हमें निम्न प्रयत्न करने चाहिए-

५१. वर्ण व्यवस्था का शुद्ध स्वरूप-ब्रह्मा जी ने अपने चार पुत्रों को चार कार्यक्रम सौंपकर उन्हें चार वर्णों में विभक्त किया है। ज्ञान, धर्म, बल और श्रम, यह चारों ही शक्तियाँ मानव समाज के लिए आवश्यक थीं। इनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वंशगत प्रयत्न चलता रहे और उसमें कुशलता तथा परिष्कृति बढ़ती रहे, इस दृष्टि से इन चारों कामों को चार पुत्रों में बाँटा गया था। चारों सगे भाई थे। इसलिए उनमें ऊँच-नीच का कोई प्रश्न ही नहीं था। किसी का सम्मान, महत्त्व और स्तर न न्यून था न अधिक। अधिक त्याग-तप करने के कारण, अपनी आंतरिक महानता प्रदर्शित करने के कारण ब्राह्मण की श्रेष्ठता तो रही, पर अन्य किसी वर्णों को हेय या निम्न स्तर का नहीं माना गया था।

आज स्थिति कुछ भिन्न ही है। चार वर्ण अगणित जातियों-उपजातियों में बाँटे गये और इसमें समाज में भारी अव्यवस्था एवं फूट फैली। परस्पर एक-दूसरे को ऊँचा-नीचा समझा जाने लगा। यहाँ तक कि एक ही वर्ण के लोग अपनी उपजातियों में ऊँच-नीच की कल्पना करने लगे। यह मानवीय एकता का प्रत्यक्ष अपमान है। व्यवस्थाओं या विशेषताओं के आधार पर वर्ण, जाति रहे, पर ऊँच-नीच की मान्यता को स्थान न मिले, सामाजिक विकास में भारी बाधा पहुँचाने वाले इस अज्ञान को जितना जल्दी हटा दिया जाये उतना ही अच्छा है।

५२. उपजातियों का भेदभाव हटे-चार वर्ण रहे पर उनके भीतर की उपजातियों की भिन्नता ऐसी न रहे, जिसके कारण रोटी-बेटी का व्यवहार भी न हो सके। प्रयत्न ऐसा करना चाहिए कि उपजातियों का महत्त्व गोत्र जैसा स्वल्प हो जाये और एक वर्ण के विवाह-शादी पूरे उस वर्ण में होने लगें। ब्राह्मण जाति के अंतर्गत सनाढ्य, गौड़, गौतम, कान्यकुब्ज, मालवीय, मारवाड़ी, सारस्वत, मैथिल, सरयूपारीण, श्रीमाली, पर्वतीय आदि अनेक उपजातियाँ हैं। यदि इनमें परस्पर विवाह-शादी होने लगे, तो उससे उपयुक्त वर-कन्या ढूँढ़ने में सुविधा रहेगी। अनेक रूढ़ियाँ मिटेंगी और दहेज जैसी हत्यारिन प्रथाओं का देखते-देखते अंत हो जायेगा। इस दिशा में साहसपूर्ण कदम उठाये जाने चाहिए।

एक-एक पूरे वर्ण की जातीय सभाएँ बनें और उनका प्रयत्न इस प्रकार का एकीकरण ही हो, जातिगत विशेषताओं को बढ़ाने, बिलगाव की भावना को हटाने तथा उन वर्गों में फैली कुरीतियों का समाधान करने के लिए ये जातीय सभाएँ कुछ ठोस काम करने के लिए खड़ी हो जायें, तो सामाजिक एकता की दिशा में भारी मदद मिल सकती है। अच्छे लड़के और अच्छी लड़की के संबंध में जानकारियाँ एकत्रित करना और विवाह संबंध में सुविधा उत्पन्न करना भी इन सभाओं का काम है।

५३. नर-नारी का भेदभाव-जातियों के बीच बरती जाने वाली ऊँच-नीच की तरह पुरुष और स्त्री के बीच रहने वाली ऊँच-नीच की भावना निन्दनीय है। ईश्वर के दाहिने-बाएँ अंगों की तरह नर-नारी की रचना हुई है। दोनों का स्तर और अधिकार एक है, इसलिए सामाजिक न्याय और नागरिक अधिकार भी दोनों के एक होने चाहिए। प्राचीनकाल में था भी ऐसा ही। तब नारी भी नर के समान प्रबुद्ध और विकसित होती थी। नई पीढ़ियों की श्रेष्ठता कायम रखने तथा सामाजिक स्तर की उत्कृष्टता बनाये रखने में उसका पुरुष के समान ही योगदान था।

आज नारी की जो स्थिति है, वह अमानवीय और अन्यायपूर्ण है। उसके ऊपर पशु जैसे प्रतिबंधों का रहना और सामान्य नागरिक अधिकारों से वंचित किया जाना, भारतीय धर्म की उदारता, महानता और

श्रेष्ठता को कलंकित करने के समान है। पुरुषों के लिए भिन्न प्रकार की और स्त्रियों के लिए भिन्न प्रकार की न्याय व्यवस्था रहना अनुचित है। दाम्पत्य जीवन में सदाचार का दोनों पर समान प्रतिबंध होना चाहिए। शिक्षा और स्वावलम्बन के लिए दोनों को समान अवसर मिलना चाहिए।

पुत्र और पुत्रियों के बीच बरते जाने वाले भेदभाव को समाप्त करना चाहिए। दोनों को समान स्नेह, सुविधा और सम्मान मिले। पिछले दिनों जो अनीति नारी के साथ बरती गई है, उसका प्रायश्चित्त यही हो सकता है कि नारी को शिक्षित और स्वावलम्बी बन सकने के लिए उचित योग्यता प्राप्त करने का अधिकाधिक अवसर प्रदान किया जाये। सरकार ने पिछड़े वर्ग को संविधान में कुछ विशेष सुविधाएँ दी हैं, ताकि वे अपने पिछड़ेपन से जल्दी छुटकारा प्राप्त कर सकें। सामाजिक न्याय के अनुसार नारी को शिक्षा और स्वावलम्बन की दिशा में ऐसी ही विशेष सुविधा मिलनी चाहिए, ताकि उनका पिछड़ापन अपेक्षाकृत जल्दी ही प्रगति में बदल सके।

पर्दाप्रथा उस समय चली, जब यवन लोग बहू-बेटियों पर कुदृष्टि डालते और उनका अपहरण करते थे, आज वैसी परिस्थितियाँ नहीं रहीं, तो पर्दा भी अनावश्यक हो गया। यदि उसे जरूरी ही समझा जाय, तो स्त्रियों की तरह पुरुष भी घूँघट किया करें; क्योंकि चारित्रिक पतन के संबंध में नारी की अपेक्षा नर ही अधिक दोषी पाये जाते हैं।

५४. अश्लीलता का प्रतिकार-अश्लील साहित्य, अर्द्धनग्न युवतियों के विकारोत्तेजक चित्र, गंदे उपन्यास, कामुकता भरी फिल्में, गंदे गीत, वेश्यावृत्ति, अमर्यादित कामचेष्टाएँ, नारी के बीच रहने वाली शील, संकोच और मर्यादा का व्यतिक्रम, दुराचारों की भौड़ें ढंग से चर्चा आदि अनेक बुराइयाँ अश्लीलता के अंतर्गत आती हैं। इनसे दाम्पत्य जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और शरीर एवं मस्तिष्क खोखला होता है। शारीरिक व्यभिचार की तरह यह मानसिक व्यभिचार भी मानसिक एवं चारित्रिक संतुलन को बिगाड़ने में दावाग्नि का काम करता है। उसका प्रतिकार किया जाना चाहिए। ऐसे चित्र, कलेण्डर, पुस्तकें, मूर्तियाँ तथा अन्य उपकरण

हमारे घरों में न रहें, जो अपरिपक्व मस्तिष्कों में विकार पैदा करें। शील और शालीनता की रक्षा के लिए विरोधी बातों को हटाया जाना ही उचित है।

५५. विवाहों में अपव्यय-संसार के सभी देशों और धर्मों के लोग विवाह शादी करते हैं, पर इतनी फिजूलखर्ची कहीं नहीं होती, जितनी हम लोग करते हैं। इससे आर्थिक संतुलन नष्ट होता है, अधिक धन की आवश्यकता उचित रीति से पूरी नहीं हो सकती, तो अनुचित मार्ग अपनाने पड़ते हैं। इन खर्चों के लिए धन जोड़ने के प्रयत्न में परिवार की आवश्यक प्रगति रुकती है, अहंकार बढ़ता है तथा कन्याएँ माता-पिता के लिए भार रूप बन जाती हैं। विवाहों का अनावश्यक आडम्बरों से भरा हुआ और खर्चीला शौक बनाये रहना सब दृष्टियों से हानिकारक और असुविधाजनक है।

दहेज की प्रथा तो अनुचित ही नहीं, अनैतिक भी है, कन्या विक्रय, वर विक्रय का यह भौंड़ा प्रदर्शन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रथा के कारण कितनी कन्याओं को अपना जीवन नारकीय बनाना पड़ता है और कितने ही अभिभावक इसी चिन्ता में घुल-घुलकर मरते हैं। इस हत्यारी प्रथा का जितना जल्दी काला मुँह हो सके, उतना ही अच्छा है।

विचारशील लोगों का कर्त्तव्य है कि वे इस दिशा में साहसपूर्ण जननेतृत्व करें। उन रूढ़ियों को तिलांजलि देकर अत्यन्त सादगी से विवाह करें। परम्पराओं से डर कर उपहास के भय से ही अनेक लोग साहस नहीं कर पाते, यद्यपि वे मन से इस फिजूलखर्ची के विरुद्ध होते हैं। ऐसे लोगों का मार्गदर्शन उनके सामने अपना उदाहरण प्रस्तुत करके ही किया जा सकता है। युग निर्माण परिवार के लोग अपने ही विचारों के वर-कन्या तथा परिवार ढूँढ़ें और सादगी के साथ आदर्श विवाहों का उदाहरण प्रस्तुत करें, इससे हिन्दू समाज की एक भारी समस्या हल हो सकेगी।

५६. बाल-विवाह और अनमेल विवाह-बाल विवाहों की भर्त्सना की जाए और उनकी हानियाँ जनता को समझाई जाएँ। स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन, आगामी पीढ़ी एवं जीवन विकास के प्रत्येक क्षेत्र पर इनका बुरा

असर पड़ता है। लड़की-लड़के जब तक गृहस्थ का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर सँभालने लायक न हों, तब तक उनके विवाह नहीं होने चाहिए। इस संबंध में जल्दी करना अपने बालकों का भारी अहित करना ही है। अशिक्षित और निम्न स्तर के लोगों में अभी बाल विवाह का बहुत प्रचलन है। उन्हें समझाने-बुझाने से या कानूनी भय बताकर इस बुराई से विरत करना चाहिए। अनमेल विवाहों को भी रोका जाना और उनके विरुद्ध वातावरण बनाना आवश्यक है।

५७. भिक्षा व्यवसाय की भर्त्सना-समर्थ व्यक्ति के लिए भिक्षा माँगना उसके आत्म गौरव और स्वाभिमान के सर्वथा विरुद्ध है। आत्म गौरव खोकर मनुष्य पतन की ओर चलता है। खेद है कि भारतवर्ष में यह वृत्ति बुरी तरह बढ़ी है और उसके कारण असंख्य लोगों का मानसिक स्तर अधोगामी बना है।

जो लोग सर्वथा अपंग, असमर्थ हैं, जिनके परिजन या सहायक नहीं, उनकी आजीविका का प्रबन्ध सरकार को या समाज को स्वयं करना चाहिए, जिससे इन अपंग लोगों को बार-बार हाथ पसारकर अपना स्वाभिमान न खोना पड़े और बचे हुए समय में कोई उपयोगी कार्य कर सकें। अच्छा हो ऐसी अपंग संस्थाएँ जगह-जगह खुल जाएँ और उदार लोग उन्हीं के माध्यम से वास्तवकि दीन-दु:खियों की सहायता करें।

बहानेबाज समर्थ लोगों को भिक्षा नहीं देना चाहिए, इससे आलस्य और प्रमाद बढ़ता है, जनता को अनावश्यक भार सहना पड़ता है और आडम्बरी लोग दुर्गुणों से ग्रस्त होकर तरह तरह से जनता को ठगते एवं परेशान करते हैं। भजन का उद्देश्य लेकर चलने वालों के लिए भी यही उचित है कि वे अपनी आजीविका स्वयं कमाएँ और बाकी समय में भजन करें।

५८. मृत्यु भोजन की व्यर्थता-किसी के मरने के बाद उस घर में दो सप्ताह के भीतर विवाह शादियों जैसी दावत का आयोजन होना दिवंगत व्यक्ति के प्रति अपमान है। दावतें तो खुशी में उड़ाई जाती हैं। मृत्यु को शोक का चिह्न मानते हैं, तो फिर दावतों का आयोजन किस उद्देश्य से?

मृतक के मित्रों और संबंधियों के लिए भी यही उचित है कि इस क्षतिग्रस्त परिवार की कोई सहायता न कर सकते हों, तो कम से कम दावतों की सलाह देकर उसका आर्थिक अहित तो न करें।

मृतक की आत्मा को शान्ति देने के लिए धार्मिक कृत्य कराएँ जाएँ, सहानुभूति प्रकट करने वाले लोग यदि दूर से आये हैं, तो वे भी ठहरें, घर, परिवार और संबंधी लोग श्राद्ध के दिन एक चौके में खाएँ। यहाँ तक तो बात समझ में आती है, पर बड़े-बड़े मृत्यु भोज सर्वथा असंगत हैं, उनकी न कोई उपयोगिता है और न आवश्यकता। यदि हो सके, तो ऐसे शुभ कार्यों में जिनसे मानवता की कोई सेवा होती हो, श्राद्ध के उपलक्ष्य में कितना ही बड़ा दान किया जा सकता है। वही सच्ची श्रद्धा का प्रतीक होने से सच्चा श्राद्ध कहा जा सकता है।

५९. जेवरों में धन की बर्बादी-जेवरों में धन की बर्बादी प्रत्यक्ष है, जो पैसा किसी कारोबार में या ब्याज पर लगने से बढ़ सकता था, वह जेवरों में कैद होने पर दिन-दिन घिसता और कैद पड़ा रहता है। टूट-फूट, मजूरी, टाँका-बट्टा में काफी हानि सहनी पड़ती है। पहनने वाले का अहंकार बढ़ता है। दूसरों में ईर्ष्या जगती है। चोर-लुटेरों को अवसर मिलता है। जिस अंग में उन्हें पहनते हैं, वहाँ दबाव और अस्वच्छता बढ़ने से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। चमड़ी कड़ी पड़ जाती है और पसीने के छेद बंद होते हैं। नाक के जेवरों से तो सफाई में भी अड़चन पड़ती है। विवाह-शादियों के अवसर पर तो वह एक समस्या बन जाते हैं। दहेज जैसी हानिकारक प्रथा का मूल भी जेवरों में रहता है। लड़की वाले जब तक जेवरों की आवश्यकता अनुभव करेंगे, तब तक लड़के वाले दहेज भी माँगते रहेंगे। जेवरों का शौक हर दृष्टि से हानिकारक है, इसे छोड़ने में ही लाभ है।

६०. भूत-पलीत और बलि प्रथा-भूत-पलीतों का मानसिक विभ्रम पैदा करके स्याने, दिवाने और ओझा लोग भोली जनता का मानसिक और आर्थिक शोषण बुरी तरह करते हैं। मानसिक रोगों, शारीरिक कष्टों एवं दैनिक जीवन में आती रहने वाली साधारण सी बातों को भूत की करतूत

बताकर व्यर्थ ही भोले लोग भ्रमित होते हैं। उस भ्रम का इतना घातक प्रभाव पड़ता है कि कई बार तो उस प्रकार के विश्वास से जीवन-संकट तक उपस्थित हो जाते हैं।

धर्मग्रंथों में जिन देवी-देवताओं का वर्णन है, उनकी संख्या भी पर्याप्त है। पर उतने से भी संतोष न करके लोगों ने जाति-जाति के, वंश-वंश के, गाँव-गाँव के इतने अधिक देवता गढ़ लिए हैं कि आश्चर्य होता है। उन पर मुर्गे, अण्डे, भैंसे, बकरे, सुअर आदि चढ़ाते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि दया और प्रेम के लिए बने हुए देवता अपने ही पशु-पक्षियों का खून पिएँ।

हमें एक परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिए और इन भूत पलीतों के भ्रम-जंजाल से सर्वथा दूर रहना चाहिए। जन समाज को भी इससे बचाना चाहिए।

हमारे समाज में अनेक कुरीतियाँ विभिन्न रूपों में पाई जाती हैं। हानिकारक और अनैतिक बुराइयों का उन्मूलन करना ही श्रेयस्कर है। सभ्य समाज को विवेकशील ही होना चाहिए और इन उपहासास्पद विडम्बनाओं से जल्दी ही अपने को मुक्त कर लेना चाहिए।

विभूतिवान् व्यक्ति यह करें

विशिष्ट प्रतिभावान् व्यक्ति अपने विशेष व्यक्तित्व के द्वारा युग निर्माण की दिशा में विशेष कार्य कर सकते हैं। कलाकारों का योग इस संबंध में विशेष रूप से अभीष्ट है। लेखक, कवि, वक्ता, संगीतज्ञ, चित्रकार, धनी, विद्वान्, राजनीतिज्ञ यदि चाहें तो अपनी विभूतियों का सदुपयोग करके नव निर्माण के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। इस प्रकार के प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों के सामने युग निर्माण योजना निम्न सुझाव प्रस्तुत करती है-

६१. लेखकों और पत्रकारों से अनुरोध-देश की विभिन्न भाषाओं में जो लेखक और कवि आजकल लेखन कार्य में लगे हुए हैं, उनसे संपर्क बनाकर यह प्रेरणा दी जाए कि वे युग निर्माण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा करें। इसी प्रकार जो पुस्तक प्रकाशक एवं पत्रकार

साहित्य प्रकाशन का कार्य हाथ में लिए हुए हैं, उन्हें मानव जीवन में प्रकाश भरने वाला साहित्य छापने की प्रेरणा की जाए। समाचार पत्र एवं पुस्तक विक्रेताओं से भी यही अनुरोध किया जाए कि उन वस्तुओं के विक्रय में विशेष ध्यान दें, जो जन कल्याण के लिए वर्तमान साहित्य क्षेत्र में लगे हुए लोगों से संपर्क स्थापित करके उन्हें युग की आवश्यकता पूर्ण करने की प्रेरणा दे सकें।

६२. **युग साहित्य के नव निर्माता**-इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में विशेष मनोयोगपूर्वक युग की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए मिशनरी ढंग से काम करने वाले लेखकों एवं कवियों का एक विशेष वर्ग तैयार किया जाए, जो साहित्य निर्माण कार्य को अपना प्रधान सेवा साधन बनाकर तत्परतापूर्वक इसी कार्य में लग सकें। ऐसे अनेक व्यक्ति मौजूद हैं, जिनमें इस प्रकार की प्रतिभा और सेवाभावना पर्याप्त मात्रा में मौजूद है, पर आवश्यक साधन, मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन न मिलने से वे अविकसित ही पड़े रहते हैं। अपना प्रयत्न ऐसे लोगों को संगठित एवं विकसित करने का हो। इस अभिरुचि एवं योग्यता के लोगों को ढूँढ़ना उन्हें इकट्ठा करना और आवश्यक प्रशिक्षण देकर इस योग्य बनाना हमारा काम होगा कि वे कुछ ही दिनों में युग निर्माता साहित्यकारों की एक भारी आवश्यकता की पूर्ति कर सकें। अखण्ड ज्योति परिवार में इस प्रतिभा के जो लोग होंगे, उन्हें हम सर्वप्रथम तैयार करेंगे और उनको आवश्यक शिक्षा देने के लिए जल्दी-जल्दी ही शिविरों की शृंखला आरंभ करेंगे।

६३. **प्रत्येक भाषा में प्रकाशन**-युग निर्माण के लिए आवश्यक एवं उपयुक्त साहित्य प्रकाशन करने के लिए देश की प्रत्येक भाषा में प्रकाशक उत्पन्न किये जाएँ, जो व्यवसाय ही नहीं मिशनरी भावना भी अपने कार्यक्रम में सम्मिलित रखें और इसी दृष्टि से अपना कार्यक्रम चलाएँ। देश में १५ भाषाएँ राज्य भाषा का स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। सोलहवीं अंग्रेजी है। इन सभी भाषाओं में युग निर्माण साहित्य स्वतंत्र रूप से प्रकाशित और प्रचारित होने लगे, उसके लिए आवश्यक प्रयत्न किया जाना चाहिए।

६४. **अनुवाद कार्य का विस्तार**-जो व्यक्ति कई भाषाएँ जानते हैं, वे

एक भाषा का सत्साहित्य दूसरी भाषा में अनुवाद करें और उस भाषा के प्रकाशकों के लिए एक बड़ी सुविधा उत्पन्न करें। भाषाओं की भिन्नता के कारण उच्च कोटि का ज्ञान सीमाबद्ध न पड़ा रहे, इसलिए यह अनुवाद कार्य भी स्वतंत्र लेखन से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। संसार के महान् मनीषियों ने जो ज्ञान अपनी-अपनी भाषाओं में प्रस्तुत किया है, उसका लाभ सीमित क्षेत्र में न रहकर समस्त भाषा-भाषी लोगों के लिए उपलब्ध हो, ऐसा प्रयास करने से ही एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी। हिन्दी भाषा परिवार के साहित्यकार जो उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत करें, उनका अनुवाद जल्दी ही देश की १६ भाषाओं में हो जाया करे, तो विचार-विस्तार का क्षेत्र बहुत व्यापक हो सकता है। आगे चलकर तो यही प्रक्रिया विश्व व्यापी बननी है। संसार के किसी भी कोने में, किसी भाषा में छपे उत्कृष्ट विचार विश्व भर की जनता को उपलब्ध हो सकें, ऐसे प्रकाशन तंत्र का विकास होना आवश्यक है और वह हम भी करेंगे।

६५. पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता-युग निर्माण लक्ष्य में निर्धारित प्रेरणाओं को विशेष रूप से गतिशील बनाने वाले पत्र पत्रिकाओं की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता है। जीवन को सीधा स्पर्श करने वाले ऐसे अगणित विषय हैं, जिनके लिए अभी कोई शक्तिशाली विचार केन्द्र दृष्टिगोचर नहीं होते। नारी समस्या, शिशु पालन, स्वास्थ्य, परिवार समस्या, अर्थ साधन, गृह उद्योग, कृषि, पशुपालन, समाजशास्त्र, जातीय समस्याएँ, अध्यात्म, धर्म, राजनीति, कथा साहित्य, बालशिक्षण, मनोविज्ञान, मानवता, सेवा-धर्म, सदाचार आदि कितने ही विषय ऐसे हैं, जिन पर नाम मात्र का साहित्य है और पत्र पत्रिकाएँ तो नहीं के बराबर हैं। आज जो पत्र निकल रहे हैं, वे एक खास ढर्रे के हैं, उनमें न तो मिशनरी जोश है और न वैसा कार्यक्रम ही लेकर वे चलती हैं। अब ऐसी पत्र-पत्रिकाओं को बड़ी संख्या में प्रकाशित होना चाहिए, जो मानव जीवन के हर पहलू पर प्रकाश डाल सकें।

योजना के अनुरूप कम से कम सौ पत्र तो इन विषयों पर तुरन्त निकलने चाहिए। जिनमें आवश्यक योग्यता और उत्साह हो, उन्हें उसके

लिए प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है।

६६. प्रकाशन की सुगठित शृंखला-पुस्तक प्रकाशकों की एक सुगठित ऐसी शृंखला होनी चाहिए, जो एक-एक विषय पर परिपूर्ण साहित्य तैयार करें। शृंखला से संबद्ध प्रकाशक एक दूसरे से अपनी पुस्तकों का विनिमय कर लिया करें। इस प्रकार हर प्रकाशक के पास प्रत्येक विषय का प्रचुर साहित्य जमा हो जाया करेगा। अपनी निजी दुकान चलाकर, फेरी से, विज्ञापन आदि से जैसे भी उपयुक्त हो, उस साहित्य का विक्रय किया जाए। इस प्रकार एक विषय का प्रकाशक पारस्परिक सहयोग के आधार पर सभी विषयों की पुस्तकों का प्रचारक बन सकेगा। अनेक वस्तुएँ पास में होने से विक्रय संबंधी असुविधा भी न रहेगी।

६७. युग निर्माण प्रेस-प्राय: प्रत्येक नगर में एक-एक युग निर्माण प्रेस होना चाहिए। जिसके माध्यम से उसके संचालक अपनी रोजी-रोटी सम्मानपूर्वक कमा लिया करें और साथ ही उस केन्द्र से आसपास के क्षेत्र में भावनाओं के विस्तार का कार्यक्रम चलता रहा करे। छोटे प्रेस न्यूनतम पूँजी से भी चल सकते हैं। साधन संपन्न प्रेसों के लिए अधिक पूँजी उपलब्ध करनी पड़ेगी। व्यक्तिगत पूँजी से या सहयोग समितियाँ गठन करके ये कार्य आरंभ किए जा सकते हैं। आमतौर से नये कार्यकर्त्ताओं को निजी अनुभव तो होता नहीं, उस व्यवसाय में लगे हुए लोग बारीकियों को बताते नहीं, इसलिए ऐसे कार्यक्रम प्राय: असफल हो जाते हैं, पर जब उन्हें सांगोपांग शिक्षण उपलब्ध हो जाएगा, तो फिर किसी कठिनाई की संभावना न रहेगी और ऐसे प्रेस प्रत्येक नगर में चलने लगेंगे। इन केन्द्रों से विचार क्रान्ति में भारी योगदान मिल सकता है।

६८. कविताओं का निर्माण और प्रसार-युग निर्माण विचारधारा के उपयुक्त भावनापूर्ण कविताएँ प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा में लिखी जाएँ। उन्हें सस्ते मूल्य पर छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में छापा जाए। जीवन के हर पहलू को स्पर्श करने वाली प्रेरणाप्रद कविताएँ सर्वत्र उपलब्ध हों, जिससे गायन संबंधी जनमानस की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हो सके। लोकगीतों में प्रेरणा भर देने का कार्य हमें पूरा करना चाहिए। गायन

का कोई क्षेत्र ऐसा न बचे, जहाँ उत्कर्ष की ओर ले जाने वाली कविताएँ गूँज न रही हों। स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत मंगल अवसर की आवश्यकता के अनुरूप लिखे, छापे और उन्हें सिखाये जाने चाहिए। उच्च साहित्य क्षेत्र से लेकर हल जोतते हुए किसानों तक में गाये जाने योग्य प्रेरणाप्रद कविताओं की भारी आवश्यकता है। इसकी पूर्ति सुसंगठित योजना बनाकर ही की जानी चाहिए। यह अभाव किसी भी क्षेत्र में किसी भी भाषा में रहने न पाएँ। इस रचनात्मक कार्य को पूरा किए बिना धरती पर स्वर्ग लोक का स्वप्न साकार न हो सकेगा। इसके लिए कवि-हृदय साहित्यकारों को बहुत कुछ करना है।

साहित्य निर्माण की उपरोक्त योजनाएँ सब दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें भाग लेने वाले अपना जीवन धन्य बनाएँगे और देश, जाति की भी बहुत बड़ी सेवा करेंगे। प्रतिभावान् लोगों को इस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए हम भावनापूर्वक आमंत्रण भेजते हैं, उन्हें आवश्यक मार्गदर्शन मिलेगा और सहयोग भी।

कला और उसका सदुपयोग

मानव अंत:करण को पुलकित एवं भाव-विभोर करने की क्षमता कला में रहती है। कला का वासना को भड़काने में इन दिनों बड़ा हाथ रहा है। अब इस महान् शक्ति को हमें जीवन निर्माण एवं समाज रचना की महान् प्रक्रिया में लगाना होगा। कला शाश्वत है। उसमें दोष कुछ नहीं, वरन् मानव अंत:करण का सीधा स्पर्श करने की क्षमता से संपन्न होने के कारण यह आवश्यक है और अभिवंदनीय है। विरोध का एकमात्र तथ्य है कला का दुरुपयोग, इसे रोका जाना चाहिए और इस सृजनात्मक शक्ति को जनमानस की श्रेष्ठता की ओर प्रेरित करने के लिए प्रयुक्त करना चाहिए। इस संदर्भ में नीचे आठ सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं-

६९. वक्तृत्व कला विकास-बोलना संसार की सबसे बड़ी कला है। व्यक्तिगत जीवन में जन सहयोग का लाभ प्राप्त करना मुख्यतया मनुष्य के

बोलने, बात करने की शैली पर निर्भर है। मीठा बोलने से पराये अपने हो जाते हैं और कटु भाषणा से अपने पराये बनते हैं। जीवन की प्रगति में उतनी और कोई बात सहायक नहीं होती, जितनी शिष्ट, मधुर, उदार और परिमार्जित वाणी। इसी प्रकार सामाजिक जीवन में सफलता प्राप्त करने का भी बहुत कुछ श्रेय विधिवत् वक्तृता पर ही निर्भर रहता है। अपने पक्ष को ठीक प्रतिपादित करने में वही व्यक्ति सफल होता है, जिसकी भाषण शैली परिमार्जित है। युग निर्माण के लिए प्रधानतया हम सबको इसी शस्त्र का पग-पग पर उपयोग करना पड़ेगा। इसलिए उसका अभ्यस्त भी होना ही चाहिए। व्यक्तिगत वार्तालाप में और जन समूह के सामने भाषण देने में किन तथ्यों का ध्यान रखना और किन बातों का अभ्यास करना आवश्यक है, इसका प्रशिक्षण अखण्ड ज्योति के सदस्यों को विधिवत् मिलना चाहिए, अन्यथा बौद्धिक क्रान्ति का यह विशाल अभियान किस प्रकार व्यापक बन सकेगा?

७०. गायकों का संगठन-भाषण की भाँति ही गायन का भी महत्त्व है। विधिवत् गाया हुआ गायन मनुष्य के हृदय को पुलकित कर देता है। भावनाओं को तरंगित करने की उतनी ही शक्ति गायन में रहती है, जितनी विचारों को बदलने की भाषण में रहती है। गायकों को संगठित करना चाहिए और उन्हें युग निर्माण भावनाओं के अनुरूप कविताएँ सीखने तथा गाने की प्रेरणा देनी चाहिए।

जहाँ-तहाँ भजन मण्डलियाँ और कीर्तन मण्डलियाँ अपने बिखरे रूप में पाई जाती हैं, उन्हें संगठित करना अभीष्ट होगा। व्यक्तिगत रूप से जो लोग गाया करते हैं, उन्हें भी अपनी कला द्वारा जन समूह को लाभ पहुंचाने की चेष्टा करनी चाहिए। सामूहिक संगीत कार्यक्रमों का आयोजन समय-समय पर होता रहे और उनमें उत्कर्ष की भावनाओं की प्रधानता रहे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

७१. संगीत शिक्षा का प्रबंध-गाने-बजाने के क्रमबद्ध शिक्षण की व्यवस्था न होने से ऐसे लोगों की कला अविकसित ही पड़ी रहती है, जिनके गले मधुर हैं और लोगों को प्रभावित करने की प्रतिभा विद्यमान

है। साधारण गायन और मामूली बाजे बजाने का शिक्षण कोई बड़ा काम नहीं है। उसे मामूली जानकार भी कर सकते हैं। खंजरी, करताल, मजीरा, ढोलक, चिमटा, इकतारा जैसे बाजे लोग बिना किसी के सिखाये देखा-देखी ही सीख जाते हैं। यदि उनकी व्यवस्थित शिक्षण व्यवस्था हो, तो उसका लाभ अनेक को आसानी से मिल सकता है और नये गायक तथा वादक तैयार हो सकते हैं।

७२. चित्रकला का उपयोग-सजावट की दृष्टि से चित्रों का प्रचलन अब बहुत बढ़ गया है। कमरों में, पुस्तकों में, पत्र-पत्रिकाओं में, दुकानों पर, कलेण्डरों में, विज्ञापनों में सर्वत्र चित्रों का बाहुल्य रहता है। इनमें से अधिकांश कुरुचिपूर्ण, गंदे, अश्लील, किम्बदन्तियों पर आधारित, निरर्थक एवं प्रेरणाहीन पाये जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि महापुरुषों, त्यागियों, लोकसेवियों और आदर्श चरित्र व्यक्तियों के तथा प्रेरणाप्रद घटनाओं के चित्रों का बाहुल्य हो और उन्हें देखकर मन पर श्रेष्ठता जाग्रत् करने वाले संस्कार पड़ें। इस परिवर्तन में ऐसे चित्रकारों का सहयोग अभीष्ट होगा, जो अपनी कला से जनमानस में ऊर्ध्वगामी भावनाओं का संचार कर सकें। ऐसे भावपूर्ण चित्र तथा प्रेरणाप्रद आदर्श वाक्यों, सूक्तियों तथा अभिवचनों के अक्षर भी कलापूर्ण ढंग से चित्र जैसे सुन्दर बनाये जा सकते हैं। अनीति के विरोध में व्यंग्य चित्रों की बड़ी उपयोगिता है। कलाकारों को ऐसे ही चित्र बनाने चाहिए और कला द्वारा जनमानस को बदल डालने में महत्त्वपूर्ण योगदान देना चाहिए।

उपरोक्त प्रकार के चित्रों का प्रकाशन व्यवसाय बड़े पैमाने पर आरम्भ करके और उन्हें अधिक सस्ता एवं अधिक सुन्दर बनाकर समाज की बड़ी सेवा की जा सकती है। चित्र प्रकाशन जहाँ एक लाभदायक व्यवसाय है, वहाँ वह प्रभावोत्पादक भी है। चित्रकारों से चित्र बनवाने, उन्हें छापने, विक्रेताओं के पास पहुँचाने, बेचने के काम में अनेक व्यक्तियों को रोटी-रोजी भी मिल सकती है। इस व्यवसाय को आरम्भ करने वाले कितने ही आदमियों को रोटी देने, समाज में भावनाएँ जाग्रत् करने एव अपना लाभ कमाने का श्रेयस्कर व्यापार कर सकते हैं। साहित्य

की ही भाँति जन भावनाओं के जाग्रत् करने में चित्रकला भी उपयोगी है।

७३. प्रदर्शनियों का आयोजन-प्रदर्शनियों के जगह-जगह आयोजन किए जाएँ। वर्तमान काल की सामाजिक एवं नैतिक बुराइयों के कारण होने वाले दुष्परिणामों के बड़े-बड़े चित्र बनाकर उन्हें सुसज्जित रूप से किसी कमरे या टेण्ट में लगाया जाए और दर्शकों को चित्रों के आधार पर वस्तुस्थिति समझाई जाए, तो यह एक बड़ा प्रभावशाली तरीका होगा। बुराइयों की बढ़ोत्तरी की चिन्ताजनक स्थिति से भी जनता को अवगत रखा जाना आवश्यक है। इसके लिए पत्रों में छपे हुए समाचारों या रिपोर्टों के उद्धरण छोटे अक्षरों में चित्रों की भाँति ही सुसज्जित बनाकर प्रदर्शित किए जा सकते हैं।

बुराइयों के प्रति क्षोभ और घृणा, सतर्कता, विरोध और संघर्ष की भावना उत्पन्न करने के लिए जिस प्रकार चित्रों और वाक्य पटों का प्रदर्शन आवश्यक है, इसी प्रकार अच्छाइयों की बढ़ती हुई प्रगति एवं घटनाओं की जानकारी कराने वाले चित्र एवं वाक्य पट इन प्रदर्शनियों में रहें, जिससे सेवा, त्याग, प्रेम, उदारता की भावनाओं को चरितार्थ करने, सन्मार्ग पर चलने और सत्कर्म करने के लिए प्रेरणा मिले। इस प्रकार की प्रदर्शनियाँ मेले-उत्सवों पर तथा अन्य अवसरों पर करते रहने के लिए व्यवस्थित योजना बनाकर चला जाए, तो इससे भावनाओं के उत्कर्ष में बड़ी सहायता मिलेगी।

७४. अभिनय और लीलाएँ-भगवान् राम और कृष्ण की लीलाएँ जगह-जगह धूमधाम से होती हैं। इसके व्यवस्थापक ऐसा प्रयत्न करें कि उनमें से निरर्थक एवं मनोरंजक अंश कम करके शिक्षा एवं सन्मार्ग की प्रेरणा उत्पन्न करने वाले अंश बढ़ा दें। उपस्थित जनता को समझाने को भी सुधरा हुआ ढंग काम में लाया जाय।

जगह-जगह अगणित मेले-ठेले होते हैं। उनके पीछे कोई न कोई इतिहास या परम्परा होती है। इसको किसी लीला, अभिनय, एकांकी, प्रदर्शनी, गायन, संगीत, पोस्टर आदि के रूप में उपस्थिति किया जाए, जिससे उन मेलों में आने वाली जनता उन आयोजनों के मूल कारणों को

समझे और उस मेले का कुछ भावनात्मक लाभ भी उठाये। रामलीला आदि में अभिनय करने वाले या उनका संचालन करने में कुशल लोग अपने-अपने क्षेत्रों में ऐसे आयोजनों का प्रबन्ध कर सकते हैं। इससे मेलों का आकर्षण भी बढ़ेगा और प्रचार कार्य की भी श्रेष्ठ व्यवस्था बनेगी।

७५. नाटक और एकांकी-सामूहिक खुले लीला अभिनयों की भाँति ही उनका सुधरा और अधिक सुन्दर रूप नाटक मण्डलियों के रूप में बनता है। रासलीलाओं का वर्तमान रूप वैसा ही है। बड़े नाटक मण्डलियों की बात यहाँ नहीं की जा रही है। थोड़े से उपकरणों का रंगमंच बनाकर अनेक महापुरुषों के जीवन की श्रेष्ठ घटनाओं, ऐतिहासिक तथ्यों तथा सामाजिक स्थिति का चित्रण करने वाले नाटकों की व्यवस्था करके उन्हें साधारण जनता के मनोरंजन का माध्यम बनाया जा सकता है। ऐसी मण्डलियाँ व्यावसायिक आधार पर गठित हो सकती हैं। जिन्हें स्थिति के अनुरूप खर्च वसूल करके उन्हें सस्ता और लोकप्रिय बनाया जा सकता है।

छोटे-मोटे आयोजनों में एकांकी अभिनय भी बड़े रोचक और मनोरंजक होते हैं। विद्यालयों में एकांकी अभिनय बड़े सफल होते हैं। उन्हें दूसरे उत्सव-आयोजनों पर भी प्रदर्शित किया जा सकता है। ऐसे एकांकी एवं नाटक लिखे और प्रदर्शित किए जाने चाहिए, जो नैतिक एवं विचार क्रान्ति में आवश्यक योगदान दे सकें।

७६. कला के वैज्ञानिक माध्यम-विज्ञान के माध्यम से कुछ कलात्मक माध्यमों का इतना विकास हो गया है कि उनका उपयोग तो जनता करती है, पर निर्माण ऊँचे स्तर पर ही हो सकता है। ग्रामोफोन के रिकार्ड और सिनेमा फिल्में इसी प्रकार के दो माध्यम हैं, जिन्होंने जनमानस पर भारी प्रभाव डाला है। ग्रामोफोन का प्रचलन तो रेडियो के विस्तार से घट गया है, पर उत्सवों के अवसरों पर लाउडस्पीकरों द्वारा रिकार्ड अभी भी बजाये जाते हैं और उन्हें लाखों व्यक्ति प्रतिदिन सुनते हैं। इसी प्रकार देश भर में हजारों सिनेमाघर हैं, जिनमें लाखों फिल्में चल जाती हैं। इन्हें भी करोड़ों व्यक्ति हर साल देखते हैं और जैसे भी विचार व संदेश उन दृश्यों

में होते हैं, उन्हें देखने वाले ग्रहण करते हैं। मानवीय मस्तिष्क को प्रभावित करने के लिए विज्ञान की यह दो बड़ी कलात्मक देन है। पर खेद इसी बात का है कि इनका दुरुपयोग ही अधिक होता है। यदि इनका सदुपयोग हो सका होता, तो जन जागृति एवं चरित्र निर्माण में भारी योग मिला होता।

सद्भावनाएँ बढ़ाने के लिए

दया, करुणा, सेवा, उदारता, सहयोग, परमार्थ, न्याय, संयम और विवेक की भावनाओं का जनमानस में जगाया जाना संसार की सबसे बड़ी सेवा हो सकती है। निष्ठुरता, संकीर्णता और स्वार्थपरता ने ही इस विश्व को नरक बनाया है। यदि वहाँ स्वर्गीय वातावरण की स्थापना करनी हो, तो उसका एक ही उपाय है कि मानवीय अन्तस्तल को निम्न स्तर का न रहने दिया जाए। उसकी प्रसुप्त सद्भावनाओं को जगाया जाए। भावनाशील व्यक्तियों को ही देवता कहा जाता है। जहाँ देवता स्वभाव के व्यक्ति रहते हैं, वहाँ ही स्वर्गीय शान्ति और समृद्धि रहती है।

सद्भावनाओं के जगाने वाले और इस दिशा में कुछ ठोस प्रेरणा देने वाले कार्यक्रम नीचे दिये हैं-

७७. सेवा कार्यों में अभिरुचि-व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से ऐसे सेवा कार्यों का कुछ न कुछ आयोजन होते रहना चाहिए, जिससे आवश्यकता वाले व्यक्तियों की कुछ सहायता होती रहे और दुखियों को सुख मिले। ईसाई मिशनों में हर जगह चिकित्सा कार्यों को स्थान रहता है। प्राचीनकाल में बौद्ध विहारों में भी ऐसी व्यवस्था रहती थी। रामकृष्ण परमहंस मिशन ने भी ऐसे ही चिकित्सालय जगह-जगह बनाये हैं। हम लोग तुलसी के अमृतोपम गुण पुस्तक के आधार पर तुलसी के पत्तों में कुछ साधारण वस्तुएँ मिलाकर औषधियाँ बना सकते हैं और उनसे अन्य प्रकार की औषधियों की अपेक्षा कहीं अधिक रोगियों की सेवा कर सकते हैं। तुलसी के पौधे बोने और थोड़ा सा खर्च करने से इस प्रकार की हानि रहित चिकित्सा का क्रम हर जगह चल सकता है। सूर्य चिकित्सा की विधि भी इस दृष्टि से बड़ी उपयोगी हो सकती है।

सेवा समितियाँ जिस प्रकार मेलों का प्रबन्ध महामारी, दुर्घटना आदि से ग्रस्त लोगों की सहायता या दूसरे प्रकार के सेवा कार्य करती हैं, वैसे ही जनहित के कोई कार्य हमें भी करते रहने चाहिए, ताकि सद्भावनाओं को जगाने में सहायता मिले। अपंग भिक्षुओं के लिए निर्वाह साधन बनाने के प्रबन्ध भी उपयोगी रहेंगे।

७८. सार्वजनिक उपयोग के उपकरण-अपनी समिति के पास कुछ ऐसे उपकरण रखे रहें, जिन्हें लोग अक्सर दूसरों से माँगकर काम चलाया करते हैं। विवाह शादियों में काम आने वाले बड़े बर्तन, जलपात्र, फर्श, बिछौने, नसैनी, लालटेनें, सजावट का सामान, कुएँ में गिरे हुए डोल रस्सी निकालने के काँटे, आटे की सेमई बनाना की मशीन जैसी छोटी मोटी चीजें एकत्रित रखी जाएँ और उन्हें मरम्मत खर्च लेकर लोगों को देते रहा जाए, तो उससे भी सहानुभूति एवं सद्भावना बढ़ती है।

७९. जीव दया के सत्कर्म-पशु-पक्षियों और जीव-जंतुओं के प्रति करुणा उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। पशु-पक्षी भी अपने ही भाई-भतीजे हैं, उनका माँस खाने, खून पीने की आदत छुड़ानी चाहिए। उससे आध्यात्मिक सद्गुण नष्ट होते हैं, नृशंसता पनपती है। चमड़ा भी आजकल जीवित काटे हुए पशुओं का ही आ रहा है। उसका उपयोग करने से भी पशु वध में वृद्धि होती है। हमें चमड़े के आधार पर कपड़ा या रबड़ के जूते पहनकर काम चलाना चाहिए और दूसरी चमड़े की बनी वस्तुएँ भी प्रयोग नहीं करनी चाहिए। मृगछालाएँ भी आजकल हत्या किये हुए पशुओं की ही मिलती हैं, इसलिए पूजा में उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। जो रेशम कीड़ों को जिन्दा उबालकर निकाला जाता है, वह भी प्रयोग न किया जाए।

सामर्थ्य से अधिक काम लिया जाना, अधिक भार लादा जाना, बुरी तरह पीटना, घायल बीमारों से काम लेना, फूँका प्रथा के अनुसार दूध निकालना आदि अनेक प्रकार से पशुओं के साथ बरती जाने वाली नृशंसता का त्याग करना चाहिए।

गौपालन, गौ दुग्ध को प्राथमिकता देना जैसे धर्म कृत्यों की तरफ ध्यान

देना चाहिए, जिससे स्वास्थ्य समृद्ध और सद्भावना की अभिवृद्धि का मार्ग प्रशस्त हो सके।

८०. ईमानदार उपयोगी स्टोर-ऐसे स्टोर चलाये जाएँ, जहाँ शुद्ध खाद्य वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिल सकें। खाद्य पदार्थों की अशुद्धता अक्षम्य है। इससे जन स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पड़ता है। इस अभाव की पूर्ति कोई ईमानदार व्यक्ति कर सके, तो उससे उसकी अपनी आजीविका भी चले और जनता की आवश्यकता भी पूर्ण हो। आटा, दाल, चावल, तेल, घी, दूध, शहद, गुड़, मेवा, मसाले, औषधियाँ, चक्की, भाप से पकाने के बर्तन, व्यायाम साधन, साहित्य, पूजा उपकरण एवं अन्य आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुओं की उचित मूल्य पर अभाव पूर्ति करने वाले व्यापारी आज की स्थिति में समाजसेवी ही कहे जा सकते हैं।

८१. सम्मेलन और गोष्ठियाँ-सद्भावनाओं को जाग्रत् करने वाला लोकशिक्षण भी व्यापक रूप से आरम्भ किया जाना चाहिए। इसके लिए समय-समय पर छोटे-बड़े सम्मेलन, विचार गोष्ठियाँ, सत्संग एवं सामूहिक आयोजन करते रहना चाहिए। एकत्रित जनसमूह को विचार देने में सुविधा रहती है और उत्साह भी बढ़ता है। गायत्री यज्ञों के छोटे-छोटे आयोजन भी इस दृष्टि से उपयोगी रहते हैं। बहुत बड़ी सभाएँ भी भीड़भाड़ की अपेक्षा विचारशील लोगों के छोटे सम्मेलन अधिक उपयोगी रहते हैं। उनमें ही कुछ ठोस कार्य की आशा की जा सकती है।

८२. नवरात्रि में शिक्षण शिविर-समय-समय पर सद्भावना शिक्षा शिविर होते रहे, इस दृष्टि से आश्विन और चैत्र की नवरात्रियाँ सर्वोत्तम रहती हैं। उस समय नौ-नौ दिन के शिविर हर जगह किया जाया करें। प्रातः जप, हवन, अनुष्ठान का आयोजन रहे। तीसरे पहर विचार गोष्ठी और भजन-कीर्तन एवं रात्रि को सार्वजनिक प्रवचनों का कार्यक्रम रहा करे। प्रसाद में सस्ता सत्साहित्य भी वितरण किया जाया करे। बलिदान में बुराइयाँ छुड़ाई जाया करें। नारी प्रतिष्ठा की दृष्टि से अंत में कन्या भोज किया जाया करे। भाषणों और प्रवचनों की आवश्यकता युग निर्माण की विचारधारा को प्रस्तुत कर सकने वाले कोई भी कुशल वक्ता आसानी से

पूरी कर सकते हैं। वर्ष में नौ-नौ दिन के दो नवरात्रि आयोजन शिक्षण शिविरों के रूप में चलते रहें, तो इससे उपासना और भावना के दोनों ही महान् लाभों से जनसाधारण को लाभान्वित किया जा सकता है। पर्व और त्यौहारों पर भी इन्हें विकसित बनाने के लिए ऐसे ही आयोजन किये जाते रहने चाहिए।

८३. धर्मप्रचार की पदयात्रा-घरेलू कार्यों से छुट्टी लेकर कुछ विचारशील लोग टोली बनाकर पद यात्रा पर निकला करें। पूर्व निश्चित प्रोग्राम पर एक-एक दिन ठहरते हुए आगे बढ़ें। प्रातः जप, हवन, तीसरे पहर विचार गोष्ठी और रात्रि को सामूहिक प्रवचनों का कार्यक्रम रहा करे। जिन जगहों में टोली को ठहरना हो, वहाँ पहले से ही आवश्यक तैयारी रहे, ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए। संत विनोबा की भूदान जैसी पद यात्राएँ युग निर्माण योजना के प्रसार के लिए भी समय-समय पर की जाती रहनी चाहिए।

८४. आदर्श वाक्यों का लेखन-दीवारों पर आदर्श वाक्यों का लेखन एक सस्ता लोकशिक्षण है, गेरू में गोंद पकाकर दीवारों पर अच्छे अक्षरों में आदर्श, शिक्षात्मक एवं प्रेरणाप्रद वाक्य लिखे जाएँ, तो उनसे पढ़ने वालों पर प्रभाव पड़ता है। जिस जगह प्रेरणाप्रद विचार पढ़ने को मिलें, तो उस स्थान के संबंध में स्वतः ही अच्छी भावना बनती है। जहाँ स्याही का ठीक प्रबन्ध न हो सके, तो सूखे गेरू की डली से भी लिखते रहने का कार्यक्रम चलता रह सकता है। कई व्यक्ति मिलकर अपने नगर की दीवारों पर इस प्रकार लिख डालने का कार्यक्रम बना लें, तो जल्दी ही नगर की सारी दीवारें प्रेरणाप्रद बन सकती हैं।

८५. संजीवनी विद्या का विधिवत् प्रशिक्षण-संजीवनी विद्या का एक केन्द्रीय विद्यालय बनाया जाना चाहिए। जिसमें जीवन की प्रत्येक समस्या पर गहन अध्ययन करने और उन्हें सुलझाने संबंधी तथ्यों को जानने का अवसर मिले। अव्यवस्था, गृहकलह, आर्थिक तंगी, विरोधियों का आक्रमण, अस्त-व्यस्त दाम्पत्य जीवन, बालकों के भविष्य निर्माण की समस्या, आत्म कल्याण पक्ष की बाधाएँ, गरीबी और असफलता, चिन्ता

और उद्वेग, अयोग्यता एवं अशक्ति, प्रगति पथ के अवरोध आदि अनेक कठिनाइयों के हल व्यक्तिगत परिस्थितियों के अनुरूप सुलझाने का प्रशिक्षण उस विद्यालय में रहे। स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय करते हुए मनुष्य किस प्रकार लोक और परलोक में सुख-शान्ति का अधिकारी बन सकता है, यह पूरा शिक्षण मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और लोकव्यवहार के सर्वांगपूर्ण आधार पर दिया जाए, जिससे व्यक्तित्व के विकास में समुचित सहायता मिले।

ऐसे विद्यालय का अभाव बहुत खटकने वाला है। अनेक प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ सर्वत्र मौजूद हैं, पर जिन्दगी जीने की विद्या जहाँ सिखाई जाती हो, ऐसे प्रबन्ध कहीं भी नहीं है, हमें यह कमी पूरी करनी है। गायत्री शक्तिपीठें हमारे ऐसे ही प्रशिक्षण केन्द्र हैं, जहाँ इस प्रकार के प्रशिक्षण सत्र चलेंगे, जैसे कि अभी शान्तिकुंज में चल रहे हैं। प्रयत्न यह होना चाहिए कि परिवार के सभी विचारशील लोग क्रमशः उनका लाभ उठाते चलें।

८६. छोटे स्थानीय शिक्षण सत्र-जो लोग शान्तिकुंज हरिद्वार नहीं पहुंच सकते और इतना लम्बा समय भी नहीं दे सकते, उनके लिए एक महीना का छोटा शिक्षण सत्र प्रत्येक केन्द्र पर चलता रहे, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। शिक्षार्थी जीवन विद्या की पाठ्य पुस्तिकाओं के आधार पर समस्याओं के सुलझाने का ज्ञान प्राप्त करें। इस प्रकार एक महीने में ३० ट्रैक्टों का अध्ययन हो सकता है, अंतिम दिन समावर्तन होगा। शिक्षार्थियों के ज्ञान की परीक्षा भी हुआ करेगी। यह पाठ्य भी सस्ती ट्रैक्ट पुस्तिका के रूप में तैयार है। इसका प्रचलन आसनी से आरंभ कर सकते हैं।

इन सत्रों के चलाने के लिए जगह-जगह व्यवस्था की जाय, जिससे युग निर्माण के लिए आवश्यक संजीवनी विद्या का ज्ञान व्यापक बन सके।

सद्भावनाओं को बढ़ाने के लिए हर प्रकार के प्रयत्न होने चाहिए। कुछ कार्यक्रमों का विवरण ऊपर दिया गया है। ऐसे और भी अनेक कार्य हो सकते हैं, जिन्हें परिस्थितियों के अनुरूप जनमानस में सद्भावनाएँ बढ़ाने की दृष्टि से उत्साहपूर्वक कार्यान्वित करते रहना चाहिए।

राजनीति और सच्चरित्रता

आज की परिस्थितियों में शासन सत्ता की शक्ति बहुत अधिक है। इसलिए उत्तरदायित्व भी उसी पर अधिक है। राष्ट्रीय चरित्र के उत्थान और पतन में भी शासन तंत्र अपनी नीतियों के कारण बहुत कुछ सहायक अथवा बाधक हो सकता है। नीचे कुछ ऐसे सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनके आधार पर राजनीति के क्षेत्र से चरित्र निर्माण की दिशा में बहुत काम हो सकता है। हम लोग आज की प्रत्यक्ष राजनीति में भाग नहीं लेते, पर एक मतदाता और राष्ट्र के उत्तरदायी नागरिक होने के नाते इतना कर्त्तव्य तो है ही कि शासन तंत्र में आवश्यक उत्कृष्टता लाने के लिए प्रयत्न करें।

जो लोग आज चुने हुए हैं, उन तक यह विचार पहुंचाया जाए और जो आगे चुने जाएँ उन्हें इन विचारों की उपयोगिता समझाई जाए। चुने हुए लोगों का बहुमत तो इस दिशा में बहुत कुछ कर सकता है। अल्प मत के लोग भी बहुमत को प्रभावित तो कर ही सकते हैं। जन आंदोलन के रूप में यह विचारधारा यदि सरकार तक पहुँचाई जाए, तो उसे भी उस ओर ध्यान देने और आवश्यक सुधार करने का अवसर मिलेगा। हमें रचनात्मक प्रयत्न करने चाहिए और शासन में चरित्र निर्माण का उपयुक्त वातावरण रहे, इसके लिए प्रयत्न करते रहना ही चाहिए।

नीचे कुछ विचार प्रस्तुत हैं, इनके अतिरिक्त तथा विकल्प में भी अनेक विचार हो सकते हैं, जिनके आधार पर राष्ट्र का चारित्रिक विकास हो सके, उनको भी सामने लाना चाहिए।

८७. गीता के माध्यम से जन जागरण-जिस प्रकार भागवत् कथा सप्ताहों के धार्मिक अनुष्ठान होते हैं, उसी प्रकार गीता कथा सप्ताहों के माध्यम से जन जागरण के आयोजन किये जाएँ। युग निर्माण योजना के अंतर्गत जिस आर्ष विचारधारा का प्रतिपादन है, वह गीता में समग्र रूप से विद्यमान है। मोहग्रस्त अर्जुन को जिस प्रकार भगवान् कृष्ण ने गीता का संदेश सुनाकर उसे कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ किया था, उसी प्रकार प्रस्तुत भारत को जाग्रत् करने के लिए जनजीवन में गीता ज्ञान का प्रवेश कराया जाना चाहिए।

इसप्रकार गीता प्रवचनों के प्रशिक्षण के लिए एक विशेष योजना तैयार की गई है। गीता श्लोकों से संगति रखने वाली रामायण की चौपाइयों में इतिहास पुराणों की कथाओं का समावेश करके ऐसी पुस्तकें तैयार की गई हैं, जिनके माध्यम से गीता की कथा को बाल-वृद्ध, नर-नारी, शिक्षित-अशिक्षित सभी के लिए आकर्षक, प्रबोधक एवं हृदयस्पर्शी बनाया जा सकता है। राधेश्याम तर्ज पर गीता का ऐसा पद्यानुवाद भी छापा गया है, जिसे कीर्तन-भजन की तरह गाया जा सकता है। आयोजनों में भाग लेने वाले व्यक्ति दो भागों में विभक्त होकर बारी-बारी इन पद्यानुवादों का सामूहिक पाठ करें, तो वह गीता पारायण बहुत ही आकर्षक बन सकता है। किस श्लोक के साथ किस युग निर्माण सिद्धान्त का समावेश किया जाए और उसका प्रतिपादन किस प्रकार हो, यह विधान इस गीता सप्ताह साहित्य में समाविष्ट कर दिया गया है। ऐसे प्रवचन कर्त्ताओं को व्यावहारिक शिक्षा देने के लिए केन्द्र में एक एक महीने के शिक्षण शिविर भी होते हैं, जिनमें प्रशिक्षण प्राप्त कर गीता के माध्यम से जन जागरण के लिए नई पीढ़ी के नये प्रवचन कर्त्ता-कथा-व्यास तैयार किये जा सकते हैं। *[यह पुस्तिका प्रकाशित किए जाने तक पूज्य गुरुदेव ने गीता कथा ही इस प्रयोजन के लिए तैयार की थी। बाद में युग पुराण के रूप में प्रज्ञा पुराण की रचना करके जन-जागरण के लिए अधिक प्रभावपूर्ण व्यवस्था बना दी गई है।]*

८८. मतदान और मतदाता-जहाँ प्रजातंत्र पद्धति है, वहाँ शासन के भले या बुरे होने का उत्तरदायित्व वहाँ के उन सभी नागरिकों पर रहता है, जो मतदान करते हैं। वोट राष्ट्र की एक परम पवित्र थाती है। उसकी महत्ता हम में से हर एक को समझनी चाहिए। किसी पक्षपात, दबाव या लोभ में आकर इसे चाहे किसी को दे डालने का उथलापन नहीं अपनाना चाहिए। जिस पार्टी या उम्मीदवार को वोट देना हो, उसकी विचारधारा, भावना एवं उत्कृष्टता को भलीभाँति परखना चाहिए। राष्ट्र के भाग्य निर्माण का उत्तरदायित्व हम किसे सौंपें ? इस कसौटी पर जो भी खरा उतरे, उसे ही

वोट दिया जाय। प्रजातंत्र का लाभ तभी है, जब हर नागरिक उसका महत्त्व और उत्तरदायित्व समझे और अनुभव करे। शासन में आवश्यक सुधार अभीष्ट हो, तो इसके लिए मतदाताओं को समझाया और सुधारा जाना आवश्यक है।

८९. शिक्षा पद्धति का स्तर-शिक्षालय व्यक्तित्व ढालने की फैक्टरियाँ होती हैं। वहाँ जैसा वातावरण रहता है, जिस व्यक्तित्व के अध्यापक रहते हैं, जैसा पाठ्यक्रम रहता है, जैसी व्यवस्था बरती जाती है, उसका भारी प्रभाव छात्रों की मनोभूमि पर पड़ता है और वे भावी जीवन में बहुत कुछ उसी ढाँचे में ढल जाते हैं। आज शिक्षा का पूरा नियंत्रण सरकार के हाथ में है, इसलिए छात्रों की मनोभूमि का निर्माण करने की जिम्मेदारी भी बहुत कुछ उसी के ऊपर है। शिक्षण पद्धति में ऐसा सुधार करने के लिए सरकार को कहा जाए, जिससे चरित्रवान्, कर्मठ, सभ्य और सेवाभावी नागरिक बनकर शिक्षार्थी निकल सकें। सैनिक शिक्षा को शिक्षण का अनिवार्य अंग बनाया जाए और नैतिक एवं सांस्कृतिक भावनाओं से विद्यालयों का वातावरण पूर्ण रहे। इसके लिए सरकार पर आवश्यक दबाव डाला जाए।

९०.कुरीतियों का उन्मूलन-सामाजिक कुरीतियों की हानियाँ नैतिक अपराधों से बढ़कर हैं। भले ही उन्हें मानसिक दुर्बलतावश अपनाये रखा गया हो, पर समाज का हित तो बहुत भारी ही होता है। इसलिए इनके विरुद्ध भी कानून बनाने चाहिए। स्वर्ण नियंत्रण का कानून कड़ाई के साथ अमल में आते ही जेवरों का सदियों पुराना मोह सप्ताहों के भीतर समाप्त हो गया। इसी प्रकार सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अन्य कानून भी बनाये जाएँ और उनके पालन कराने में स्वर्ण नियंत्रण जैसी कड़ाई बरती जाए। यों दहेज, मृत्यु भोज, बाल विवाह, वेश्यावृत्ति आदि के विरुद्ध कानून मौजूद हैं, पर वे इतने ढीले-पोले हैं कि उससे न्याय और कानून का उपहास ही होता है। यदि सचमुच ही कोई सुधार करना हो, तो कानूनों में तेजी और कड़ाई रहनी आवश्यक है। सरकार पर ऐसे ही सुधारात्मक कड़े कानून बनाने के लिए जोर डाला जाए।

९१. सस्ता, शीघ्र और सरल न्याय-आज का न्याय बहुत पेचीदा, बहुत लम्बा, बहुत व्यय साध्य और ऐसी गुत्थियों से भरा है कि बेचारा निर्धन और भोला-भाला व्यक्ति न्याय से वंचित ही रह जाता है। धूर्तों के लिए ऐसी गुंजायश मिल जाती है कि वे पैसे के बल पर सीधे को उलटा कर सकें। न्याय तंत्र में से ऐसे सारे छिद्र बंद किए जाने चाहिए और ऐसी व्यवस्था बननी चाहिए तथा ऐसा परिवर्तन होना चाहिए कि सरल रीति से ही व्यक्ति को शीघ्र और सस्ता न्याय प्राप्त हो सके। इस विभाग के कर्मचारियों के हाथ में जनता को परेशान करने की क्षमता न रहे, तो रिश्वत सहज ही बंद हो सकती है।

९२. अपराधों के प्रति कड़ाई-अपराधियों के प्रति कड़ाई की कठोर नीति रखने की प्रेरणा सरकार को करनी चाहिए। स्वल्प दण्ड और जेलों में असाधारण सुविधाएँ मिलने से बंदी सुधरते नहीं, वरन् निर्भय होकर आते हैं। सुधारने वाला वातावरण जेलों में कहाँ है ? यदि वहाँ असुविधा भी न रहेगी, तो अपराधी लोग उसकी परवाह न करते हुए दुस्साहसपूर्ण अपराध करते ही रहेंगे। रूस आदि जिन देशों में अपराधी को कड़ी सजा मिलती है, वहाँ के लोग अपराध करते हुए डरते हैं। यह डर घट जाय या मिट जाए, तो अपराध बढेंगे ही। इसलिए स्वल्प दण्ड देने वाले कानून और जेल में अधिक सुविधाएँ मिलना चरित्र निर्माण की दृष्टि से हानिकारक है, इस तथ्य को सरकार से मनवाने का प्रयत्न किया जाए।

कानूनी पकड़ से जो लोग बच जाते हैं उन असामाजिक गुण्डा तत्त्वों की अपराध वृत्ति रोकने के लिए विशेष तंत्र गठित रहे, जिसमें उच्च आदर्शवान्, परखे हुए लोग ही गुप्तचरों के रूप में वस्तुस्थिति का पता लगाते रहें। इनकी जाँच के आधार पर गुण्डा तत्त्वों को नजरबंद किया जा सके, ऐसी व्यवस्था रहे। आज अपराधी लोग कानून की पकड़ से आतंक, धन और चतुरता के आधार पर बच निकलते हैं। यह सुविधा बंद की जाए। न्यायालयों से ही नहीं वस्तुस्थिति जाँच करने वाली उच्च स्तरीय जाँच समिति की सूचना के आधार पर भी दण्ड व्यवस्था की जा सके, ऐसी व्यवस्था की जाए।

९३. अधिकारियों की प्रामाणिकता–अपराधों को रोकने वाले शासनाधिकारियों को उनकी ईमानदारी और विश्वसनीयता की लम्बी अवधि तक परख होते रहने के बाद नियुक्त किया जाए। उन्हें विभागों में से लिया जाय और यह देखा जाए कि अपराधों को रोकने में इनकी भावना एवं प्रतिभा कैसी रही है। अनुभवहीन लड़कों को एकदम अपराध निरोधक पदों पर नियुक्त कर दिया जाना और उनके चरित्र की गुप्त जाँच न होते रहना शासन में भ्रष्टाचार उत्पन्न करता है। जिन पदों पर भ्रष्टाचार की संभावना है, उन पर नियुक्तियाँ शिक्षा एवं योग्यता के अतिरिक्त अनुभव एवं चरित्र को प्रधानता देते हुए की जाया करें। अपराधी अधिकारियों को सामान्य दण्ड की अपेक्षा दस-बीस गुना दण्ड मिलने की व्यवस्था कानून में रहे। अधिकारियों का भ्रष्टाचार मिटे बिना जनता की अनैतिकता का मिट सकना कठिन है।

९४. आर्थिक विषमता घटे–आर्थिक विषमता और फिजूलखर्ची पर नियंत्रण रहे। आर्थिक कारणों से अधिकतर अपराध बढ़ते हैं। इसलिए उपलब्धि के साधन हर व्यक्ति को इतने मिलें, जिससे उसकी ठीक गुजर हो सके। यह तभी संभव है, जब अधिक उपभोग एवं संग्रह की सीमा पर भी नियंत्रण हो। मिलों में कपड़ों की डिजायनें कम बनें, तो कपड़े का खर्च बहुत घट जाए। इसी प्रकार उपयोगी वस्तुओं की संख्या एवं भिन्नता सीमित कर दी जाए। राष्ट्रीय उत्पादन का एक स्तर कायम हो, जिसमें थोड़ा अंतर तो रह सकता है, पर जमीन-आसमान जैसा अन्तर न हो। सामूहिकता और समता के आधार पर समाज का पुनर्गठन किया जाए, तो उसमें अपराधों की गुंजायश सहज ही बहुत घट जाएगी।

युग निर्माण की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

युग निर्माण की पृष्ठभूमि राजनैतिक एवं सामाजिक नहीं, वरन् आध्यात्मिक है। उतना महत्त्वपूर्ण कार्य इसी स्तर पर उठाया या बढ़ाया जा सकता है। राजनैतिक एवं सामाजिक स्तर पर किए गए सुधार प्रयत्नों में वह श्रद्धा, भावना, तत्परता एवं गहराई नहीं हो सकती, जो आध्यात्मिक

स्तर पर किए गए प्रयत्नों में संभव है। हम इसी स्तर से कार्य आरंभ कर रहे हैं। इसलिए हम सबको उपासना, तपश्चर्या एवं आध्यात्मिक भावनाओं से ओतप्रोत होना चाहिए तथा योजना के संपर्क में आने वाले दूसरे लोगों को भी इसी भावना से प्रभावित करना चाहिए। हमारे सुधार आंदोलन आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए एक साधन मात्र हैं। इसलिए साधन के साथ साध्य को भी ध्यान में रखना ही होगा। हमारे छह आध्यात्मिक कार्यक्रम नीचे प्रस्तुत हैं-

९५. गायत्री उपासना- संस्कृति का मूल उद्गम गायत्री महामंत्र है। उसमें जीवनोत्कर्ष की समस्त शिक्षाएँ बीज रूप से मौजूद हैं। उपासना का मूल उद्देश्य, भावनाओं और प्रवृत्तियों का सन्मार्ग की ओर प्रेरणा प्राप्त करना ही तो होता है। यह आधार गायत्री में है और उसकी उपासना में वह शक्ति भी है कि अंत:करण को इसी दिशा में मोड़ें। इस दृष्टि से गायत्री सर्वांगपूर्ण एवं सार्वभौम मानवीय उपासना कही जा सकती है। उसके लिए हमें नित्य नियमित रूप से कुछ समय निकालना चाहिए, चाहे वह समय पाँच मिनट ही क्यों न हो। १०८ गायत्री मंत्र जपने में प्राय: इतना ही समय लगता है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि अपने घर, परिवार, संबंधी, समाज और परिचय क्षेत्र के लोग गायत्री उपासना में संलग्न रहें। इससे अतिरिक्त उपासनाएँ जो करते हैं, वे उन्हें भी करते हुए गायत्री जप कर सकते हैं।

९६. यज्ञ की आवश्यकता-जिस प्रकार गायत्री सद्भावना की प्रतीक है, उसी प्रकार यज्ञ सत्कर्मों का प्रतिनिधि है। अपनी प्रिय वस्तुओं को लोकहित के लिए निरन्तर अर्पित करते रहने की प्रेरणा यज्ञीय प्रेरणा कहलाती है। हमारा जीवन ही एक यज्ञ बनना चाहिए। इस भावना को जीवित-जाग्रत् रखने के लिए यज्ञ प्रक्रिया को दैनिक जीवन में उपासनात्मक स्थान दिया जाता है। हमें नित्य यज्ञ करना चाहिए। यदि विधिवत् यज्ञ करने में समय और धन खर्च होने की असुविधा हो, तो चौके में बने भोजन के पाँच छोटे ग्रास गायत्री मंत्र बोलते हुए अग्निदेव पर होमे जा सकते हैं अथवा भोजन करते समय इसी प्रकार का अग्निपूजन किया जा सकता है। घी का दीपक एवं अगरबत्ती जलाना भी यज्ञ विधि

का ही एक रूप है। इनमें से जिसे जैसी सुविधा हो, वह यज्ञ क्रम बना लें, पर यह प्रथा अखण्ड ज्योति परिवार के हर घर में जीवित अवश्य ही रहनी चाहिए।

९७. समयदान यज्ञ-प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह दूसरों को विचारशील बनाने के लिए युग निर्माण की भावनाओं को अपने तक ही सीमित न रखकर, दूसरों तक पहुँचाने के लिए नियमित रूप से कुछ समयदान करे। जनसंपर्क के लिए समय निकाले। मित्रों, स्वजन, संबंधियों, रिश्तेदारों एवं परिचितों से, अपरिचितों से संपर्क बनाने के लिए नियमित रूप से उनके घर जाए, अपने विषय की पुस्तकें उन्हें पढ़ने को दे तथा अपने मिशन की चर्चा करे। इस प्रकार अपने संपर्क क्षेत्र में प्रकाश फैलाने के लिए अपने समय का एक अंश परमार्थ कार्यों में उसी तरह लगाते रहना चाहिए, जिस तरह अन्य दैनिक आवश्यक कार्यों के लिए लगाते रहते हैं।

९८. आत्म चिंतन और सत्संकल्प-युग निर्माण का सत्संकल्प हमें नित्य पाठ उठते समय और रात को सोते समय करना चाहिए। उसके अनुसार जीवन ढालना चाहिए। सोते समय दिन भर के कामों का लेखा-जोखा लेना चाहिए और जो भूलें उस दिन हुई हों, वे दूसरे दिन न होने पाएँ, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। जीवन को दिन-दिन शुद्ध करते रहा जाए।

९९. अविच्छिन्न दान-परम्परा-नित्य कुछ समय और कुछ धन परमार्थ कार्यों के लिए देते रहने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। दान हमारे जीवन की एक अविच्छिन्न आध्यात्मिक परम्परा के रूप में चलता रहे। इस प्रकार अपनी आजीविका का एक अंश नियमित रूप से परमार्थ के लिए लगाया जाता रहे। इसके लिए कोई धर्मपेटी या धर्मघट में अन्न या पैसा डालते रहा जाए। यह धन केवल सद्भावना प्रसार के ज्ञानयज्ञ में ही खर्च हो, युग निर्माण का आधार यही तो है।

इसी प्रकार धर्म प्रचार के लिए, जनसंपर्क के लिए कुछ समय भी नित्य दिया जाए। नित्य न बन पड़े, तो साप्ताहिक अवकाश के दिन अधिक समय देकर दैनिक क्रम की पूर्ति की जाए। सद्भावनाओं के प्रसार और

जागरण के लिए जनसंपर्क ही प्रधान उपाय है। इसमें झिझक या संकोच करने की, अपमान अनुभव करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है।

१००. सत्याग्रही स्वयंसेवक सेना-सामाजिक कुरीतियों एवं नैतिक बुराइयों को मिटाने के लिए राग-द्वेष से रहित, संयमी, मधुर व्यवहार वाले दृढ़ चरित्र व्यक्तियों की एक ऐसी सत्याग्रही सेना गठित की जानी है, जो दूसरों को बिना कष्ट पहुँचाए अपने ही त्याग, तप से बुराइयाँ छुड़ाने के लिए कष्ट सहने को तैयार हों। सत्याग्रह कहाँ, किस प्रकार किया जाए, यह एक बहुत ही दूरदर्शिता का प्रश्न है, अन्यथा सुधार के स्थान पर द्वेष फैल सकता है। इन सब बातों का ध्यान रखते हुए सत्याग्रही स्वयंसेवक सेना का गठन और उसके द्वारा बुराइयों के उन्मूलन की व्यवस्था भी करनी ही पड़ेगी। इसके लिए उपयुक्त व्यक्तियों को अपना नाम स्वयंसेवकों की श्रेणी में लिखाना चाहिए। शक्ति को देखते हुए वैसे ही कार्यक्रम आरम्भ किये जाएँगे और पहले उन्हें प्रशिक्षित भी करना पड़ेगा।

आदर्शों का उद्घोष करते तो अनेकों हैं, पर उसका पालन करने का समय आने पर वे उद्घोषकर्त्ता ही मुखौटे बदल लेते हैं और हमारा अति महत्त्वपूर्ण आन्दोलन मात्र प्रोपेगण्डा का उपहासास्पद विषय बनकर रह जाता है, यह विडम्बना ही है। ऊँचे उद्देश्यों की प्राप्ति और पूर्ति के लिए ऐसे व्यक्तित्व चाहिए, जो वाणी या लेखनी से उपदेश देने की प्रक्रिया अपनाकर कर्त्तव्य की इतिश्री न मान लें, वरन् ऐसे प्रतिभाशाली चाहिए, जो प्रयोग को अपने ऊपर करने के उपरान्त दूसरों को यह विश्वास दिला सकें कि उपदेष्टा की अपने प्रतिपादन पर कितनी गहरी निष्ठा है।

(अखण्ड ज्योति-१९८९, अगस्त)